समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

मई–जुलाई, 2023, वर्ष 48

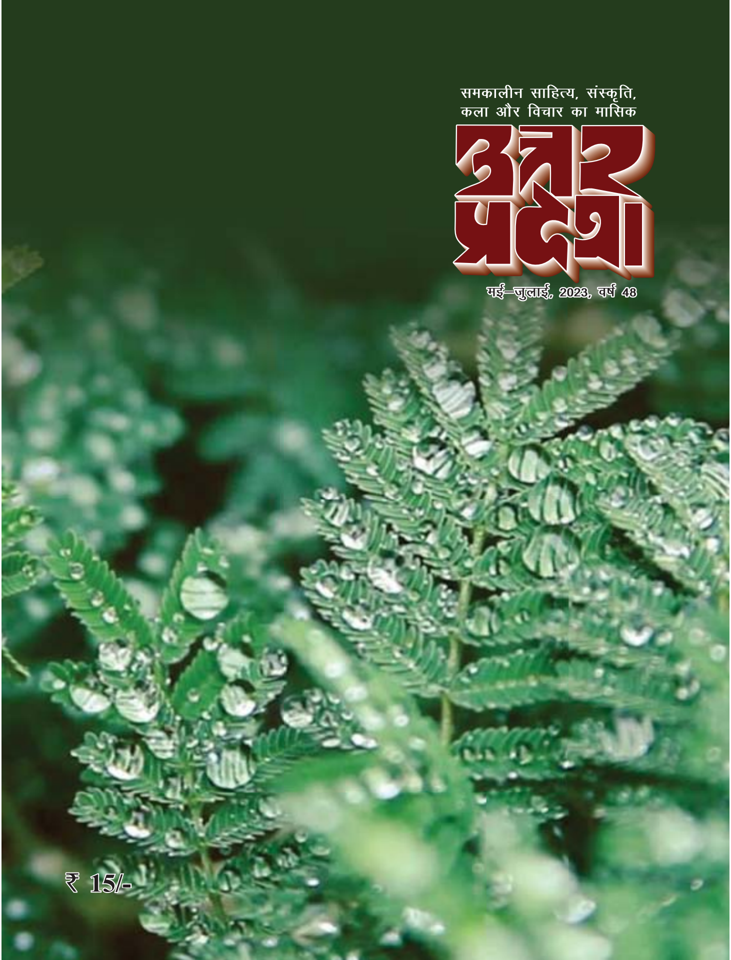

₹ 15/-

अनुजा का एक गीत

स्वप्न तो जितना मधुर है
सत्य उतना ही कठिन है !

स्वप्न में तो साथ तुम हो
और फागुन भीगता है
सत्य लेकिन है यही कि
मन अकेला रीतता है।
स्वप्न तो है पुष्पमय
पर सत्य काँटों से भरा है
स्वप्न है यदि चाँदनी तो
सत्य सूरज की तपन है।

स्वप्न तो यह कह रहा है
दीप आशा के जलाओ
सत्य का लेकिन झकोरा
कह रहा मत मन लगाओ।
स्वप्न यदि मधुमासमय तो
सत्य आँसू से भरा है।
स्वप्न शीतल छाँह यदि तो
सत्य मेघों की अगन है!

स्वप्न तो मधुरिम मिलन पर
सत्य बिछुड़न से भरा है
स्वप्न केवल प्राप्ति लेकिन
सत्य आँखों से झरा है।
स्वप्न लय, सुर, ताल है तो
सत्य शापित अप्सरा है।
स्वप्न दीपक आस का यदि
सत्य तो तम की किरन है !

स्वप्न कहता है– मिलेगा
वो जिसे तुम चाहते हो,
सत्य हँसता है– मिटोगे
यदि उसे तुम माँगते हो।
स्वप्न कहता है– क्षणिक ही
पर खुशी से आज जी लो,
सत्य कहता है– मगर ये
अब सुनो– तुम आँख भर लो।
जो मिला अब तक, तुम्हारा
था, तभी तुम छीन पाए
अब न कुछ भी हाथ आएगा
मेरी यह बात सुन लो !
स्वप्न क्या टूटी अधूरी कल्पना है
सत्य क्या है, स्वप्न का अंतिम चरण है।

◆

पता : 243/43, बाग लाल जी,
नादान महल रोड, लखनऊ–226004
मो. : 9453031216, 9580303828

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष 48 ❑ अंक 51–53
❑ मई–जुलाई, 2023

अनुक्रम

संस्मरण
- न भूतो न भविष्यति ❑ गंभीर सिंह पालनी / 3

संवाद
- इन्ट्यूशन ही मेरी शक्ति है ❑ गौतम चटर्जी / 12

कहानी
- टारगेट ❑ कल्पना मनोरमा / 16
- बरसों बाद... ❑ सुनीता अग्रवाल / 23
- भीगी आँखें, खाली मन ❑ मीनाधर पाठक / 28
- बूढ़ी मैना : दो स्थितियाँ ❑ अनिता गोपेश / 34
- कनेर के फूल ❑ प्रदीप उपाध्याय / 38
- गीली रोटी ❑ समरा निज़ाम / 42
- गुमसुम ❑ डॉ. अलका अस्थाना ''अमृतमयी'' / 45

कविताएँ / ग़ज़ल
- विनीता अस्थाना की कविताएँ / 48
- संध्या रियाज़ की कविता / 50
- डॉ. रीतादास राम की कविताएँ / 51
- समरपाल सिंह की दो कविताएँ / 54
- अतीक अरहम की ग़ज़ल / 56
- विनीता अस्थाना की कविताएँ / 48
- अनुजा का एक गीत / आवरण–1
- डॉ. ओम निश्चल के दो गीत / आवरण–2

पुस्तक समीक्षा
- गुनाह बनती बेगुनाही की दीर्घा ❑ रेणुका अस्थाना / 57
- ''पहली औरत''...यानि राना लियाकत बेगम ❑ सुरेन्द्र अग्निहोत्री / 60
- चिनहट 1857 : संघर्ष की विस्मृत हुई गौरव गाथा ❑ एस. अग्निहोत्री / 62

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
प्रमुख सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **शिशिर**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

सम्पादकीय परामर्श : ❑ **अंशुमान राम त्रिपाठी**
अपर निदेशक, सूचना

सम्पादक : ❑ **कुमकुम शर्मा**
उप निदेशक, सूचना

सहयोग : ❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**
उपसम्पादक, सूचना

आवरण : **गौतम चटर्जी**

भीतरी रेखांकन : **सिद्धेश्वर और रीतिका**

सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय
सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
मो. : 9565449505, 8960000962
ईमेल : upmasik@gmail.com

दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 2236198, 2239011

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये ❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये
❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रूपये ❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
—सम्पादक

वे हमारे सभ्य होने के इन्तज़ार में हैं।
और हम उनके मनुष्य होने के।।
—जसिंता केरकेट्टा

जसिंता आदिवासी कवयित्री हैं, उनकी बेबाक रचनाएं हमें भीतर तक झकझोरती हैं, तथा पाठक को लम्बे समय तक समाज के ज़रूरी विषयों पर सोचने के लिए मजबूर करती रहती हैं। 31 जुलाई प्रेमचंद जयन्ती पर आयोजित एक संगोष्ठी में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रेमचंद के कथा लेखन और उनके विषयों के चयन को लेकर हो रही विस्तृत चर्चा के बीच एक सवाल किसी नवोदित लेखक द्वारा उठाया गया कि, "क्या प्रेमचंद प्रगतिवादी लेखक थे", यह सवाल कुछ इस तरह से पूछा गया था कि इस एक वाक्य ने बहुत कुछ सोचने पर मजबूर ज़रूर किया, ऐसे आयोजनों का यह सुखद परिणाम होता है कि ये आपको नए—नए दृष्टिकोणों से विचार और चिन्तन के लिए विवश करते हैं। प्रेमचंद की 'गोदान', 'ईदगाह', 'निर्मला', 'बड़े घर की बेटी', 'गबन', 'कफ़न' आदि सभी रचनाएं अपने समय से बहुत आगे की बात करती हुई—सी लगती हैं, वे समाज के सर्वहारा, दीन हीन, दलित समाज का साथ देने और उनकी समस्याओं के निदान के लिए जूझते हुये दिखाई देते हैं । उन्होंने चाहा था, सभी समाज में एक समान हों वे पूंजीवाद का विरोध करते हैं और दुर्बलों को सशक्त करने के प्रयास करते हैं। वर्ष 1936 में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन में प्रेमचंद ने अध्यक्षीय भाषण देते हुये कहा था, ''मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि जो कुछ लिख दिया जाय, वह सब साहित्य है साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई है, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुन्दर है और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण है, और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियां व्यक्त की गई हों। साहित्य की बहुत—सी परिभाषाएं की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है।"

प्रेमचंद का साहित्य अपने समय का दस्तावेज़ है। प्रेमचंद अपने सम्पूर्ण साहित्य में सामाजिक समस्याओं और कुरीतियों पर प्रहार करते नज़र आते हैं। वे समझौते में विश्वास नहीं करते अपितु समस्याओं से बाहर निकलने का रास्ता भी सुझाते हैं प्रेमचंद को पढ़ना अपने समय को पढ़ना है। यही वजह..है कि उन्हें कालजयी कथाकार उपन्याकार कहा जाता है प्रेमचंद एक ऐसे कथाकार थे जो लोकप्रिय होने के साथ—साथ अपने समय से बहुत आगे चलने वाले कथाकार हैं। आज भी जब हम प्रेमचंद को पढ़ते हैं तो शायद परिस्थिति और समय को देखते हुये वे हमें आज भी उतने ही प्रासंगिक लगते हैं, जितने बहुत पहले लगते थे।

इस अंक में कलाविद् गौतम चटर्जी द्वारा लिया गया अविस्मरणीय अभिनेत्री लिव ओलमैन का साक्षात्कार है। कहानियों में इस बार कल्पना बाजपेयी मनोरमा, शशि दीक्षित मीनाधर पाठक, प्रदीप उपाध्याय हैं, डॉ. ओम निश्चल, अनुजा, विनीता अस्थाना, संध्या रियाज़, डॉ. रीतादास राम, समरपाल सिंह, अतीक अरहम की कविताएँ तथा राजगोपाल सिंह वर्मा तथा मैत्रेयी पुष्पा की पुस्तकों की समीक्षाएं प्रकाशित कर रहे हैं।

पिछले दिनों सुप्रसिद्ध अमेरिकी उपन्यासकार कॉर्मक मैक्काथी का 89 वर्ष की आयु में 13 जून, 2023 को निधन हो गया। उत्तर प्रदेश परिवार की तरफ से उन्हें विनम्र श्रद्धान्जलि। अंक कैसे लग रहे हैं, अवश्य बताइयेगा ज़ब्तशुदा साहित्य विशेषांक आप तक पहुंच गया होगा कैसा लगा प्रतिक्रियाओं से अवगत अवश्य कराते रहिये। यही हमारी निधि है।

कुमकुम शर्मा

न भूतो न भविष्यति

❑ गंभीर सिंह पालनी

दिनांक 5 मई, 2016 को सहृदय साहित्यकार एवं उत्तर प्रदेश के पूर्व सूचना निदेशक श्री उमेश कुमार सिंह चौहान का निधन फॉलिकुलर लिंफोमा बीमारी (एक प्रकार का कैंसर) के चलते देश की राजधानी दिल्ली में स्थित अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में होने की दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी। अगले दिन यानि दिनांक 6 मई, 2016 को उत्तर प्रदेश के लखनऊ से लगे उन्नाव जिले के शुक्लागंज नामक कस्बे से गुजरने वाली गंगा नदी के बलुआ घाट पर अपने उस अभिन्न मित्र की पार्थिव देह को अग्नि में समर्पित होते हुए विस्फारित नयनों से देखना मेरे लिये हृदय को विदीर्ण कर देने वाला अनुभव रहा। ऐसा होना स्वाभाविक ही था क्योंकि अग्नि को समर्पित किये जाने के उपरांत पंच तत्व में विलीन होती यह पार्थिव देह उस मित्र की थी जिस से मेरी दोस्ती की शुरुआत उस के निधन से लगभग बत्तीस वर्ष पूर्व दिनाँक 6 अगस्त, 1984 को हुई थी।

उत्तर प्रदेश के पूर्व सूचना निदेशक साहित्यकार स्वर्गीय श्री उमेश कुमार सिंह चौहान

मुझे 6 अगस्त, 1984 की वह सुबह और उनसे हुई बातचीत का एक–एक शब्द आज लगभग चालीस वर्ष बाद भी अच्छी तरह याद है, जब नैनीताल एक्सप्रेस ट्रेन के सफर में एक सहयात्री के रूप में वे अचानक मेरे जीवन में आए। मैं ट्रेन के सेकंड क्लास स्लीपर कोच में लखनऊ से हल्द्वानी के लिए सफर कर रहा था।

सुबह के समय ट्रेन जब लालकुआं रेलवे स्टेशन पर पहुँची तो मेरे सामने की बर्थ पर बैठे एक लड़के ने मुझसे यह प्रश्न पूछा कि काठगोदाम कितनी देर में आएगा? उसने यह भी कहा कि वहां उतर कर उसे नैनीताल जाना है। इस पर मैंने उत्तर दिया कि यदि आपको नैनीताल जाना है तो आप काठगोदाम तक जाने के बजाय उससे पहले पड़ने वाले स्टेशन हल्द्वानी पर भी उतर सकते हैं। हल्द्वानी के बस अड्डे से नैनीताल के लिए कई बसें चलती हैं। इसलिये वहाँ से आपको आसानी से बस मिल जाएगी।

हमारी बातें सुनकर कंपार्टमेंट की साइड वाली बर्थ पर नीली जींस–शर्ट पहने बैठे मेरे हमउम्र एक युवक ने एकाएक कहा, 'तो क्या मैं भी हल्द्वानी में उतर जाऊं? मुझे भी नैनीताल जाना है।'

प्रत्युतर में मैंने कहा, ''जैसा आप उचित समझें।''

इस युवक पर मेरी नजर पिछली रात को लखनऊ से ट्रेन के चलना शुरु करने से पहले भी पड़ी थी और मैंने देखा था कि पाँच–छः लोग उसे विदा करने आए थे।

''आप नैनीताल में ही रहते हैं?''–उस युवक ने प्रश्न किया तो मैंने उत्तर दिया, ''हां''

''क्या करते हैं?''–पूछे जाने पर मैंने बड़े गर्व से अंग्रेजी में अपना परिचय दिया कि मैं नैनीताल बैंक नामक बैंक में ऑफिसर हूँ।

इस पर उस युवक ने तपाक से अपना दाहिना हाथ मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा, ''माइसेल्फ उमेश कुमार सिंह चौहान। आई एम गोइंग टू ज्वाइन एज डिप्टी कलेक्टर इन नैनीताल। फॉरमरली आई हैड बीन प्रोबेशनरी ऑफिसर इन पंजाब एंड सिंध बैंक कैलकट्टा।'' (कैलकट्टा से आशय आज के कोलकाता से था)

मुझे यह सुनकर कुछ अटपटा–सा लगा। मुझे लगा कि मेरे कानों ने कुछ ग़लत तो नहीं सुन लिया। एक डिप्टी कलेक्टर और वह भी सेकंड क्लास स्लीपर में! मैंने कहा, ''पार्डन मी, आपने क्या कहा?''

उन्होंने वही संवाद दोहराया। फिर बोले, ''आपने अपना नाम नहीं बताया।''

मेरे द्वारा अपना नाम बताए जाने पर वे बोले, ''आप लखनऊ यूनिवर्सिटी के प्रोडक्ट हैं ना!''

मैंने कहा, ''नहीं।''

इस पर वे बोले, ''फिर आपका नाम कुछ जाना–पहचाना सा क्यों लगता है?''

इसके कुछ देर बाद फिर खुद ही बोले, ''आप लिखते भी हैं ना?''

मेरे द्वारा, ''हां।'' कहे जाने पर वे बोले, ''ध्यान आ गया, पिछले दिनों मैंने 'सारिका'' पत्रिका में आपकी रचना पढ़ी थी। इसलिए इसलिए आपका नाम मेरे ज़ेहन में था।''

फिर आगे बोले, ''मैं भी लिखता हूं। मैं 'नवनीत' और 'स्वतंत्र भारत' में छपता रहा हूं। ठीक है, आज से हम आप दोस्त हुए।''

मेरे मुंह से एकाएक निकल पड़ा, ''अजी साहब, कहां आप हाकिम और कहां मैं। हम आपस में दोस्त कैसे हो सकते हैं?''

दरअसल उन दिनों हमारे परिवार के खेती की ज़मीन से संबंधित कुछ मुकदमें नैनीताल जिले की किच्छा तहसील में चल रहे थे और उनके सिलसिले में मुझे बहुत भाग–दौड़ करनी पड़ती थी। इसलिये मैं बहुत परेशान था। ऐसे में अनायास ही एक डिप्टी कलेक्टर से इस तरह एकाएक मुलाकात हो जाना और उसके द्वारा मेरे सम्मुख दोस्ती का प्रस्ताव रखना मेरे लिए एक अलग ही तरह का अनुभव था।

तभी चौहान साहब ने अपना दाहिना हाथ मेरी तरफ बढ़ाया और बोले, ''नैनीताल जिले में प्रवेश करते हुए सबसे पहले आप से मेरा परिचय हुआ है। इसलिये यह आज से आपके दोस्त का हाथ है।''

मैं पहले तो कुछ पलों के लिये ठिठका लेकिन फिर दोस्ती के लिये मेरी ओर बढ़े उस हाथ की ओर मैंने भी अपना हाथ आगे बढ़ा दिया।

चौहान साहब ने दोस्ती का वह हाथ जीवन पर्यन्त नहीं छोड़ा। दिनांक 6 अगस्त, 1984 से ले कर अपने देहावसान तक की लगभग बत्तीस वर्षों से भी अधिक की अवधि में वे अपने कैरियर में निरंतर ऊँचाइयों की ओर अग्रसर रहे पर मुझे कतई नहीं भूले। अपने इस मित्र को सार्वजनिक जीवन में सदैव अपना अभिन्न मित्र स्वीकार करते रहने के साथ–साथ अपनी कविताओं में और अपनी पुस्तकों की भूमिकाओं में भी अपने इस मित्र का उल्लेख करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। एक मित्र के रूप में उनके द्वारा ऐसा किया जाना एक दुर्लभ उदाहरण है जब कि मेरे तो बहुत से ऐसे अनुभव रहे हैं कि जिन लोगों को मैंने कभी उंगली पकड़कर चलना सिखाया या कई प्रकार से जिनकी मदद की, वे अपने जीवन का वह समय बीत जाने के साथ ही मुझे भूल गये और उन्हें अब इस बात का जरा–सा भी ध्यान नहीं आता कि कभी मुझे याद भी कर लें।

चौहान साहब ने दोस्ती का वह हाथ जीवन पर्यन्त नहीं छोड़ा। दिनांक 6 अगस्त, 1984 से ले कर अपने देहावसान तक की लगभग बत्तीस वर्षों से भी अधिक की अवधि में वे अपने कैरियर में निरंतर ऊँचाइयों की ओर अग्रसर रहे पर मुझे कतई नहीं भूले। अपने इस मित्र को सार्वजनिक जीवन में सदैव अपना अभिन्न मित्र स्वीकार करते रहने के साथ–साथ अपनी कविताओं में और अपनी पुस्तकों की भूमिकाओं में भी अपने इस मित्र का उल्लेख करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। एक मित्र के रूप में उनके द्वारा ऐसा किया जाना एक दुर्लभ उदाहरण है जब कि मेरे तो बहुत से ऐसे अनुभव रहे हैं कि जिन लोगों को मैंने कभी उंगली पकड़कर चलना सिखाया या कई प्रकार से जिनकी मदद की, वे अपने जीवन का वह समय बीत जाने के साथ ही मुझे भूल गये और उन्हें अब इस बात का जरा–सा भी ध्यान नहीं आता कि कभी मुझे याद भी कर लें।

चौहान साहब ने कई पुस्तकों का सृजन किया। उनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं : 'गाँठ में लूँ बाँध थोड़ी चाँदनी' (गीत संग्रह), चार कविता संग्रह, क्रमशः 'दाना चुगते मुर्गे', 'उन्हें डर नहीं लगता', 'जनतन्त्र का अभिमन्यु' व 'चुनी हुई कविताएं'। इनके अतिरिक्त 'सृजन, समाज और संस्कृति' शीर्षक एक पुस्तक के साथ–साथ मलयालम भाषा के कवि अक्कित्तम की हिंदी में अनूदित कविताओं का संग्रह भी 'अक्कित्तम की कविताएं' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

कविता संग्रह 'दाना चुगते मुर्गे' में मुझे लेकर एक कविता है–'मेरे एक मित्र'। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

''नैनीताल में मेरे एक मित्र हैं
गंभीर सिंह पालनी
अपने नाम के अनुरूप गंभीर रहते हैं
....
जवानी के दिनों में जब हम दोनों
ठंडी सड़क से हो कर
मल्लीताल से तल्लीताल तक
जाया करते थे
झील में अपनी परछाइयाँ ताकते
तब भी वह ऐसे ही थे
आज लगभग 20 साल बाद भी
कुछ नहीं बदला है उनमें
जब कि मुझे नैनीताल छोड़े
हो गए हैं 17 साल।''

प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'लमही' के अक्टूबर – दिसंबर 2011 के अंक में प्रकाशित अपनी कविता 'नैनीताल' में वे लिखते हैं :

'पूरे पच्चीस साल बाद
पहुंचे जब हम नैनीताल इस बार
तो एक–ब–एक फिर से समा गई
नैनी झील की तरलता
मेरी नस–नस में
मैं पहले की तरह ही ठगा–सा देखता रह गया
माल रोड के और अधिक रंगीन हो गए नज़ारों को
किसी अदृश्य आकर्षण से बंधा खिंचता चला गया मैं
हर उस जगह
जहाँ–जहाँ से जुड़ी हैं मेरी पुरानी स्मृतियां
मल्लीताल की बाल मिठाई,
ज़हूर भाई की दुकान,
पुराने सचिवालय का पार्क,
एम.एल.ए. क्वार्टर्स
ब्रुक हिल कॉलोनी, सूखा ताल
और फिर से मन किया कि लपक कर चढ़ जाऊँ
अपने आसन्न बुढ़ापे की बढ़ती अशक्तता को ललकारती
चाइना पीक पर
....
अगर जब इस बार की तरह ही
फिर यहां आने के लिए क्या हमने
अपने नैनीताल छोड़ने की स्वर्ण जयंती के आने का इंतज़ार
तो शायद तब तक न हम जीवित रहेंगे
इस दुनिया में
फिर से देखने को इस खूबसूरत झील वाले शहर को।''

सन् 1986 में आई.ए.एस. में चयन हो जाने पर चौहान साहब को केरल कैडर मिला था। इसलिये ऐसा होना स्वाभाविक ही था कि लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी में ट्रेनिंग पूरी होने के बाद वे केरल चले गए थे। 1986 में नैनीताल से विदा होने के लगभग 25 वर्ष बाद वे दिनाँक 13 अप्रैल, 2011 को नैनीताल आए थे।

उनके साथ उनके परिवार के अलावा केरल में ही पोस्टेड उनके एक मित्र लखविंदर सिंह (इंडियन फॉरेस्ट सर्विस) व उनका परिवार भी था। अगले दिन यानि 14 अप्रैल, 2011 को मेरा जन्म दिन था। यह बात उन्हें याद थी और बड़ा बाजार नैनीताल से चुपचाप खरीद कर सरप्राइज गिफ्ट ला कर मुझे देना वे नहीं भूले थे।

यह भी एक संयोग ही रहा कि जहाँ पहली बार सन् 1984 में उनसे मेरा पहला परिचय होने से ले कर उनके 1986 में नैनीताल से चले जाने तक की अवधि में मैं नैनीताल में ही पोस्टेड रहा था, तो दूसरी बार पच्चीस वर्ष बाद जिन दिनों वे सन् 2011 में नैनीताल आये, उस दौरान भी एक बार फिर से मेरी पोस्टिंग नैनीताल में ही चल रही थी।

अक्टूबर सन् 1984 में ही वह भाभी जी श्रीमती नंदिता

चौहान तथा बिटिया ख्याति, जो कि अभी केवल कुछ माह की ही थी, को नैनीताल ले आए थे। धीरे–धीरे मैं उन सभी का घनिष्ठ पारिवारिक मित्र हो गया था।

उन दिनों उन्हें एम.एल.ए. क्वार्टर्स में 17 नंबर का आवास आवंटित हुआ था। अक्सर शाम को वे माल रोड, नैनीताल पर स्थित मेरे बैंक के बाहर रुकते और मुझे अपने साथ ले जाते। हम दोनों साथ–साथ घूमते हुए उनके आवास पर पहुँचते। मेरा रात का खाना अक्सर उनके आवास पर ही होता था और उनके आग्रह पर प्रायः मैं वहीं सो भी जाता था।

ऐसा भी हुआ कि मैं आदतन सुबह लेट उठता तो पाता कि मेरे जूतों में पालिश हुई पड़ी है। जब मैंने पहली बार ऐसा पाया तो मैं चौंका क्योंकि उस आवास में तब उनके पास कोई नौकर नहीं था। (चूँकि यह उनकी नौकरी के शुरुआती दिन थे।)

मेरे चौंकने पर वे बोले, ''अरे यार, भाई हो तुम मेरे। अपने जूतों में पॉलिश करते हुए अगर मैंने तुम्हारे जूतों में भी कर दी तो क्या हो गया। इसमें इतना सोचने वाली क्या बात है?''

उनकी इस अदा ने मुझे उनके मित्र से ज्यादा उनका भक्त बना दिया था। एक दिन शाम को वे मिले। उस से एक दिन पहले ही वे यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन की प्रारम्भिक परीक्षा देकर दिल्ली से लौटे थे। उन्होंने मुझ से पूछा, ''गंभीर, क्या तुम्हें पता है कि 'डोडाबेट्टा' क्या है? सिविल सर्विसेज के जनरल नॉलेज के पर्चे में एक प्रश्न यह भी आया था। हमने अपने डी. एम. साहब से पूछा तो वे भी नहीं बता पाये थे।''

उस ज़माने में आज की तरह इंटरनेट वगैरह नहीं था जिसके माध्यम से कोई भी जानकारी चुटकियों में हासिल कर ली जाये। यह तो वह ज़माना था जब एक शहर से दूसरे शहर में फोन करने के लिए ट्रंक कॉल बुक करनी पड़ती थी जिस के कई घंटे बाद मिलने पर किसी से बात करना संभव हो पाता था।

बी.ए. में मेरा एक विषय भूगोल भी रहा था। इसलिये मैंने तुरंत उत्तर दिया, '' 'डोडाबेट्टा' नीलगिरी पर्वत की चोटी का नाम है।''

उन्होंने कहा, ''श्योर?''

जवाब में मैंने कहा, ''श्योर।''

इस पर वे बहुत प्रसन्न हुए बोले कि अब अगले वर्ष के लिये तुम भी यूनियन सिविल सर्विसेज की परीक्षा की तैयारी करो। मुझे विश्वास है कि तुम उसमें सफल हो कर आई.ए.एस. बन सकते हो। उन्होंने सिर्फ ऐसा कहा ही नहीं बल्कि इसके बाद उन्होंने मुझे भी इस परीक्षा की तैयारी में शामिल कर लिया। उन दिनों ए.टी.आई. नैनीताल के एक कमरे में मैं भी उनके साथ पढ़ाई में जुट गया। अपनी झूठी बीमारी का मेडिकल सर्टिफिकेट बैंक भिजवा कर मैंने छुट्टियां ले ली थीं। सामान्य ज्ञान की प्रतिष्ठित ईयर बुक 'मनोरमा ईयर बुक' (मलयालम मनोरमा ग्रुप का प्रकाशन) से परिचय उस दौरान उन्होंने ही कराया। 'मनोरमा ईयर बुक' से जुड़ने के इस सिलसिले को उन्होंने यहीं पर विराम नहीं दिया। सन् 1996 में वे कालीकट जिले के जिला कलेक्टर थे। जब मैं उनके निमंत्रण पर अपनी पत्नी के साथ उनके पास कालीकट पहुंचा तो पूरे केरल का भ्रमण करवाने के क्रम में वे मुझे मलयालम मनोरमा के संपादकीय विभाग के सदस्य श्री राजेश कालिया के कोट्टायम स्थित घर में भी ले गए और उनसे मेरा परिचय कराया जो कि आज तक बना हुआ है।

कालीकट जाने के पीछे भी एक कहानी है। दरअसल केरल में उनकी पहली पोस्टिंग कोट्टायम के पास पाले नामक स्थान पर हुई थी। उसके बाद उनकी पोस्टिंग इधर–उधर होती रही पर उनसे पत्र–व्यवहार बना रहा।

कुछ वर्ष बाद एक रात्रि को टेलीविजन पर सिद्धार्थ काक और रेणुका शहाणे का लोकप्रिय प्रोग्राम 'सुरभि' देखते हुए मेरी नज़र नारियल के पेड़ पर चढ़ते हुए कोझीकोड़ यानि कालीकट के कलेक्टर पर पड़ी जिनके चेहरे पर दाढ़ी थी।

''अरे ! ये तो अपने चौहान साहब हैं।'' मेरे मुँह से एकाएक निकली हर्ष मिश्रित चीख को सुनकर पत्नी चौंक पड़ी तो मैंने उसे उमेश चौहान साहब के साथ अपनी मित्रता के विषय में बतलाया।

उसके तुरंत बाद हमारा कार्यक्रम बन गया कि केरल जायेंगे। मैंने उसी दिन चौहान साहब को इस सम्बंध में पत्र लिखा।

जिस दिन हम कालीकट पहुंचे, उस दिन जन्माष्टमी थी। रात्रि में चौहान साहब ने हमारे स्वागत में समुद्र तट पर उसी स्थान पर स्थित होटल में डिनर का आयोजन किया जिस स्थान पर सदियों पहले वास्कोडिगामा का स्वागत कालीकट के बादशाह जमोरिन ने किया था। डिनर की टेबल पर नाटकीय अंदाज में वे बोले, ''मालाबार की धरती पर आपका स्वागत है।''

इसी अंदाज में 12 सितंबर, 1996 को कालीकट के पाँच सितारा होटल 'मालाबार होटल' में उन्होंने हमें विदाई भोज भी दिया था।

ये सारे आयोजन उस शख़्स की ओर से किये गये थे जिसने वर्ष 1984–85 में ए.टी.आई. नैनीताल के एक कमरे में

सिविल सर्विसेज के लिए पढ़ाई करते हुए एक दिन भगौने में चाय बनाते हुए चाय में चीनी मिलाने की विशेष 'ट्रेनिंग' मुझे दी थी। पीतल के स्टोव पर भगौने में चाय चढ़ी हुई थी। बर्तन में चढ़ाये गये पानी में चायपत्ती व चीनी डाल तो दी गई थी मगर उसे चलाने के लिए उस समय चम्मच नहीं मिल रही थी। मेरे यह कहने पर कि चम्मच तो कहीं पर मिल नहीं रही, वे बोले, ''वाह भाई, यह भी कोई बात हुई! आई.ए.एस. बनोगे तो समस्याएं कैसे सुलझाओगे? यह लो स्केल और चम्मच की बजाय इस से काम चलाओ।'' ऐसा कहते हुए उन्होंने लकड़ी का बारह इंची स्केल मुझे थमा दिया था।

मेरी पत्नी चौहान साहब का बहुत सम्मान करती हैं। चौहान साहब के आमंत्रण पर जब हम लोग कालीकट गए तो चौहान साहब ने पूरे 3 सप्ताह तक हमें वापस लौटने की अनुमति नहीं दी। पूरा केरल घूमने हेतु हमारे लिये सारी व्यवस्था चौहान साहब ने ही की थी और वे कई स्थानों पर हमारे साथ गए भी। जब कहीं पर उनकी एंबेसेडर कार रुकती तो वे स्वयं कार से पहले उतर कर फुर्ती से उसके दाहिने दरवाज़े के पास पहुँचते और उस तरफ बैठी पत्नी के लिए अपने हाथ से कार का दरवाजा खोलते। इतना सम्मान पाना हम दोनों के लिए नितांत अकल्पनीय अनुभव था। हमारे केरल प्रवास के दौरान चौहान साहब ने मेरी पत्नी व मुझे इतना सम्मान दिया कि हम दोनों हमेशा उन दिनों के अनुभवों को याद करते हैं। कालीकट में उनके सरकारी आवास पर रहना, उनके द्वारा कन्याकुमारी में की गई रहने की व्यवस्था, केरल के प्रसिद्ध गायक प्रदीप सोमसुंदरम के घर पर हमें उनका ले जाया जाना, 12 सितंबर, 1997 को कालीकट के पाँच सितारा मालाबार होटल में आयोजित हमारा विदाई भोज और तदोपरांत 14 सितंबर के बजाय, 13 सितम्बर को ही गवर्नमेंट पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, कालीकट में हिंदी दिवस के आयोजन की व्यवस्था कर उसमें विशिष्ट अतिथि के रूप में मेरा सम्मान करवाना हम दोनों कभी नहीं भुला पायेंगे। कहने का आशय है चूँकि 13 सितंबर को ही हमारा कालीकट से दिल्ली के लिए रिजर्वेशन था, इसलिए गवर्नस्ट पोस्ट ग्रैजुएट कॉलेज कालीकट में हिंदी दिवस 13 सितंबर को मनाया गया। उसके बाद कालीकट के रेलवे स्टेशन पर उनका सपरिवार हमें विदा करने आना और विदाई के समय भाव विभोर होकर चौहान साहब और मेरा आलिंगनबद्ध होना कभी न मिट सकने वाली स्मृतियाँ हैं।

चौहान साहब से जुड़ी हुई इस तरह की न जाने कितनी यादें हैं। मित्रता के शुरुआती दिनों में एक शाम को नैनीताल की माल रोड पर टहलते हुए मैंने उन्हें बतलाया कि झील के किनारे स्थित 'कोपाकबाना' नामक जो यह रेस्टोरेंट आपको दिखाई पड़ रहा है, इसका जिक्र बांग्ला लेखक सिद्धेश की एक कहानी में मिलता है जो कि साहित्यकार प्रेमचंद जी के बेटे श्रीपत राय जी के संपादन में इलाहाबाद से निकलने वाली प्रतिष्ठित पत्रिका 'कहानी' में प्रकाशित हुई थी। इस पर वे बोले, ''आओ, आज आपको इसी रेस्टोरेंट में कॉफी पिलाता हूं मगर एक शर्त पर कि आप मुझे वह कहानी अवश्य पढ़वाओगे

उस दिन के बाद भी कई बार काफी पीने जाना हुआ मगर कभी भी उन्होंने बिल मुझे नहीं देने दिया। जब भी मैं नैनीताल जाता हूं और माल रोड से गुजरता हूं तो कोका कोका कबाना रेस्टोरेंट से जुड़ी चौहान जी की यादें मुझे घेर लेती हैं।

एक बार मैंने उन्हें नैनीताल से लगभग 68 किलोमीटर दूर स्थित अपने गांव दानपुर आमंत्रित किया तो वे बोले कि मैं ज़रूर चलूंगा। उन दिनों उन्हें अलग से जीप आवंटित नहीं हुई थी मगर वे निस्संकोच रोडवेज की बस में बैठकर लगभग 65 किलोमीटर दूर स्थित कस्बे रुद्रपुर और फिर वहां से टेंपो में बैठकर मेरे गांव में मेरे पैतृक घर पहुंचे। यही नहीं रुद्रपुर के तत्कालीन परगना मजिस्ट्रेट श्री अरुण अरुण कुमार सिन्हा, आई.ए.एस. से मेरा परिचय भी कराया जो कि सिन्हा साहब के उत्तर प्रदेश में एक वरिष्ठ पद से सेवानिवृत्ति के बाद भी आज तक बना हुआ है। सिन्हा साहब के अतिरिक्त उनके साथ कार्यरत डॉ. अलका टंडन और श्री सत्येंद्र सिंह जी के व्यवहार में भी आज तक कोई बदलाव नहीं आया है जिनसे उन्होंने हमें नैनीताल में मिलवाया था जब कि लगभग चार दशक बीतने को हैं।

एक और बात है जिसे लिखे बग़ैर भी काम चल सकता है मगर लिखे बिना मन मान नहीं रहा। उन दिनों वे डिप्टी कलेक्टर, नैनीताल थे। एक दिन वे बोले, 'आज तुम मुझे दो सौ रुपये उधार दे दो। भोपाल में हमारे किसी रिश्तेदार का बेटा है, उसने मंगवाए हैं। नैनीताल महंगा शहर है। जितना वेतन मिल रहा है, उस से यहाँ के खर्चे पूरे नहीं पड़ते। फिर यह बात भी है कि इससे पहले मैं बैंक में था। वहां मेरा वेतन यहाँ से ज्यादा था। अब तो स्थिति यह है कि प्रायः घर से पैसे मंगाने पड़ते हैं।'' बाद में वे रुपये उन्होंने मुझे लौटा भी दिये।

मैं उस प्रसंग को कभी भुला नहीं पाता क्योंकि उत्तर प्रदेश की प्रोविंशियल सिविल सर्विसेज का एक डिप्टी कलेक्टर अत्यंत निश्छल भाव से मुझ से ऐसी बात कह रहा था जब कि उनसे छोटे पदों पर कार्य करने वाले व्यक्तियों के ठाठ–बाट भी मैंने देखे थे। चौहान जी ज्यों–ज्यों पदोन्नति

की सीढ़ियां चढ़ते चले गये, यह सरलता और सहजता उन में बढ़ती चली गई।

जनवरी 2016 में बैंक ने मेरा स्थानांतरण देहरादून से लखनऊ कर दिया। वहाँ मैं अपने स्वर्गीय चाचा जी के बेटों के परिवारों के साथ कल्याणपुर में रह रहा था। दिनांक 4 मई, 2016 की रात्रि को दो बजे अचानक मेरी नींद खुल गई। मन पता नहीं क्यों बेचैन हो उठा। किसी अनिष्ट की आशंका से कांप उठा। समझ में नहीं आया कि क्या करूं? कमरे की लाइट ऑन करके बैठ गया। एक बार मन में आया कि उमेश चौहान जी को मोबाइल पर मैसेज करके पूछें कि उनके क्या समाचार हैं? मैसेज करना शुरु करने से पहले ही उंगलियां थम गयीं। मन में विचार आया कि वे बीमार चल रहे हैं। ऐसे में उन्हें आराम की जरूरत है। उन्हें डिस्टर्ब करना ठीक नहीं। ऐसा सोचते हुए अपने नोकिया मोबाइल का मैसेज बॉक्स खोल कर दिनांक 17 अप्रैल, 2014 की रात्रि को 2:22 बजे उन्हें मेरे दवारा किया गया मैसेज पढ़ने लगाः

''ओ यात्री निराले हो तुम/रेल के सफर में मिले थे 30 बरस पहले/और मेरी जिंदगी के सफर में अभी तक साथ निभा रहे हो।''

उन्हें उक्त मैसेज भेजने के बाद जो हुआ, वह मेरे लिये हमेशा याद रहने वाला अनुभव है कि कुछ ही मिनटों बाद रात्रि में ही 2:35 बजे उनका जवाबी मैसेज मेरे मोबाइल में पहुंच चुका थाः

''ओ सहयात्री सफर लंबा है/राह कठिन है/एक दूसरे को समझने वाले भी कम ही हैं/इसलिए साथ बने रहो मंज़िल आने तक।''

उनकी ये पंक्तियाँ मुझे 5 मई, 2016 को बार–बार याद आती रहीं और उनके गांव दादूपुर से निकली उनकी शव यात्रा में उन्हें कंधा देते हुए, उन्नाव जिले के शुक्लागंज में गंगा नदी के बलवा घाट पर उन्हें अग्नि में विलीन होता देखते हुए मैं उनके जीवन की आख़िरी मंजिल तक उनके साथ बना रहा।

एक बार मैंने उन्हें नैनीताल से लगभग 68 किलोमीटर दूर स्थित अपने गांव दानपुर आमंत्रित किया तो वे बोले कि मैं जरूर चलूंगा। उन दिनों उन्हें अलग से जीप आवंटित नहीं हुई थी मगर वे निस्संकोच रोडवेज की बस में बैठकर लगभग 65 किलोमीटर दूर स्थित कस्बे रुद्रपुर और फिर वहां से टेंपो में बैठकर मेरे गांव में मेरे पैतृक घर पहुंचे। यही नहीं रुद्रपुर के तत्कालीन परगना मजिस्ट्रेट श्री अरुण अरुण कुमार सिन्हा, आई.ए.एस. से मेरा परिचय भी कराया जो कि सिन्हा साहब के उत्तर प्रदेश में एक वरिष्ठ पद से सेवानिवृत्ति के बाद भी आज तक बना हुआ है। सिन्हा साहब के अतिरिक्त उनके साथ कार्यरत डॉ. अलका टंडन और श्री सत्येंद्र सिंह जी में भी आज तक कोई बदलाव नहीं आया है जिनसे उन्होंने हमें नैनीताल में मिलवाया था जब कि लगभग चार दशक बीतने को हैं।

चौहान जी और मैं हमेशा फोन पर बात नहीं करते थे पर उनके और मेरे बीच वक्त–बेवक्त भी 'टैक्स्ट मैसेजेज' का आदान–प्रदान चलता रहता था। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैंने यदि उन्हें कॉल किया हो तो उन्होंने फोन न उठाया हो चाहे, वे चाहे कितने भी व्यस्त क्यों ना रहे हों। कभी ज्यादा व्यस्त होते थे तो मोबाइल ऑन कर देते थे ताकि उनकी उस तरफ की बातचीत मुझे सुनाई पड़ने से मेरी समझ में आ जाए कि इस समय वे बहुत ज्यादा व्यस्त हैं। ऐसा ही मेरे द्वारा उन्हें मैसेज भेजे जाने पर भी होता था जिससे मुझे उनकी व्यस्तता का अंदाज़ा हो जाता था।

आज भी मुझे बेहद पछतावा है कि दिनांक 4 मई, 2016 की रात्रि को 2:00 बजे मैंने उन्हें मैसेज क्यों नहीं किया। वह उनके जीवन की अंतिम रात्रि थी। उस रात्रि के बीतने के बाद एम्स, दिल्ली के प्रांगण में 5 मई, 2016 का जो दिन आया, वह उन्हें हम सभी लोगों से सदा के लिये छीन ले गया।

4 मई, 2016 की रात्रि को नींद खुलने के बाद कमरे की लाइट जलती छोड़कर मैं जाने कब सो गया। सुबह लगभग 6:00 बजे उठा। अखबार आ गया था। उसे पढ़ने बैठ गया। चाय पी ली लेकिन घूमने जाने का मन नहीं हुआ।

5 मई, 2016 की रात्रि को भी नींद ठीक से नहीं आई। ऐसा लगता रहा कि कहीं कुछ गड़बड़ है। सुबह 6:00 बजे उठकर सोफे पर बैठ गया। जिस घर में रह रहा था, उस परिवार की महिला सदस्य ज्योति पालनी (रिश्ते में मेरे छोटे चचेरे भाई की पत्नी) आई और बोलीं– ''क्या आप कल की तरह आज भी घूमने नहीं जा रहे हैं?''

मैंने जवाब दिया कि मन नहीं हो रहा। पता नहीं क्यों कल से ही कुछ अच्छा नहीं लग रहा।

इस पर वे भीतर के कमरे से 'दैनिक हिंदुस्तान' लेकर आयीं और मुझे थमाते हुए बोलीं, ''आज मैंने अखबार को भीतर इसलिए रख दिया था कि अगर अखबार आपके सामने पड़ जाए तो आप घूमने जाने के बजाय अखबार पढ़ने में

मगन हो जाते हैं और फिर आपका घूमना छूट जाता है जैसा कि आपने कल किया था किया था।''

मैंने चाय पीने के साथ ही अखबार पढ़ना शुरू किया। एकाएक मेरी नज़र उसमें प्रकाशित उमेश कुमार सिंह चौहान के फोटो पर पड़ी। फोटो के साथ प्रकाशित समाचार का शीर्षक था, ''आई.ए.एस. अफसर यू.के.एस. चौहान का निधन।''

यह समाचार पढ़ कर मैं स्तब्ध रह गया। पूरा समाचार कई बार पढ़ा। फिर अचानक उठकर भीतर गया और घर के सदस्यों को इस समाचार के बारे में यह कहते हुए बतलाना शुरु किया कि आज अगर मॉर्निंग वॉक पर निकल गया होता तो शायद आज का यह अखबार और इस में प्रकाशित यह समाचार पढ़ने से वंचित रह पाता।

इसके बाद मैंने सबसे पहला फोन पत्नी को देहरादून मिलाया। यह समाचार सुनकर वह भी स्तब्ध रह गयीं। पत्नी को फोन करने के बाद मैंने दूसरा फोन श्री सत्येंद्र कुमार सिंह जी (लखनऊ विकास प्राधिकरण के तत्कालीन उपाध्यक्ष) को मिलाया। श्री सत्येंद्र जी से नैनीताल में सन् 1984 में चौहान जी ने परिचय कराया था। वे उनके बैचमेट थे।

सत्येंद्र जी का जवाब मिला कि कल रात को एक वाट्स एप ग्रुप में चौहान जी के निधन का समाचार मिलने पर उन्होंने सबसे पहला फोन मुझे ही मिलाया था पर उस समय मेरा मोबाइल 'स्विच्ड ऑफ' आ रहा था। उन्होंने प्रश्न किया कि चौहान जी के गाँव के लिए कब निकल रहे हो ? मैंने कहा कि तुरंत निकल रहा हूं।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार शिवमूर्ति जी को फोन किया तो उन्होंने बतलाया कि यह समाचार उन्हें पहले से ही पता है। मैं कुछ देर बाद ही चौहान जी के गाँव के लिये रवाना होने को तैयार होने लगा। अखबार के अनुसार उनका शव विमान द्वारा दिल्ली से लखनऊ पहुँचेगा। पहुँचने ही वाला होगा–सोचकर मैं वहाँ जल्दी पहुँचना चाहता हूँ।

इतने तनाव में घिर कर, इतने ट्रैफिक के बीच भीड़–भाड़ वाली सड़कों पर लखनऊ से बंथरा और फिर उस के बाद उनके गाँव दादूपुर तक कार की ड्राईविंग करते हुए चौहान जी के गाँव तक की लम्बी यात्रा करना मुझे उस दिन कठिन लगा। इसलिये मैंने पब्लिक ट्रांसपोर्ट से जाने का फैसला लिया।

कल्याणपुर से निकल कर मैं उस से लगी रिंग रोड पर पहुँचा। निशातगंज के लिए जा रहे विक्रम पर बैठ गया। खुर्रम नगर के चौराहे पर जो मंदिर है उसके बाहर ही बिक्री के लिए फूल रखे हुए थे। मैं गेंदे के फूल खरीदते हुए भीतर से थरथरा रहा था। फूल खरीद कर मैं फिर से विक्रम में बैठ गया। उस विक्रम से विकास नगर के मोड़ पर उतरा और आकस्मिक अवकाश हेतु प्रार्थना पत्र व बैंक की चाबियां देने अपने बैंक के चीफ मैनेजर श्री अमर सिंह जी के घर पर पहुँचा। वे घर पर नहीं मिले तो उनसे फोन पर विस्तृत बात कर के ये दोनों चीजें उनकी श्रीमती जी को थमा कर दूसरे विक्रम से गोलमार्केट, महानगर पहुँचा। उसके बाद तीसरे विक्रम में बैठकर चारबाग और वहाँ से चौथे विक्रम द्वारा नादरगंज चौराहा। नादरगंज चौराहे पर पहुँचकर पाँचवे विक्रम से बंथरा के लिए प्रस्थान किया। बंथरा कस्बे के दादूपुर मोड़ पर कई पुलिस वाले खड़े दिखाई दिये। उनमें से एक को मैंने बतलाया कि मुझे चौहान साहब के घर दादूपुर पहुँचना है तो उसने तुरंत ही अपनी मोटरसाइकिल स्टार्ट की और मुझे दादूपूर में चौहान जी के घर के सामने छोड़ गया।

इस गांव में पहले भी मेरा आना हुआ है लेकिन तब यहाँ आते हुए मन में कितना उल्लास हुआ करता था। एक बार जब चौहान जी होली पर केरल से अपने गांव आने वाले थे तो उन्होंने मुझे पत्र द्वारा सूचित कर दिया था और गाँव आने का आग्रह भी किया था। मैंने रुद्रपुर में अपने घर वालों से कह दिया था कि मैं अब की बार होली चौहान साहब के गाँव में ही मनाऊँगा और मैं इस गाँव में उनके अपने घर पहुंचने से कुछ घंटे पहले ही उनके इस घर में पहुंच गया था। उस दिन मुझे पहले से ही यहाँ पहुँचा हुआ देखकर उन्होंने पहुंचते ही मुझे बाहों में भर लिया था। यह 1989 की होली की बात है. उनके गाँव में मनाई गयी उस होली में मैंने देखा था कि वे गांव के जन–जन के साथ होली खेल रहे थे और हारमोनियम बजाते हुए फाग गा रहे थे। होली वाले दिन वे मुझे अपनी मोटरसाइकिल के पीछे बिठाकर अपने आसपास के गांवों में लोगों के घर होली मिलने भी गए थे।

मैं एक बार उनके पिताजी की बरसी पर भी इस गांव में पहुंचा था। उनके पिताजी का निधन उन दिनों हुआ था जब वे उत्तर प्रदेश के सूचना निदेशक थे। इन्हीं यादों के साथ मैंने चौहान जी के पैतृक घर के अहाते में प्रवेश किया।

पैतृक घर के बरामदे पर चौहान जी का शव लोगों की भीड़ से घिरा रखा हुआ था। मैंने भीड़ को चीरते हुए चौहान जी के शव के पास पहुँचने का प्रयास किया। नंदिता भाभी की नज़र मुझ पर पड़ी। उनके मुँह से निकला, आओ, गंभीर आओ। देखो, अपने भाई साहब को इन्हें जगाओ और इनके साथ कविता कहानी करो।

चौहान जी की छोटी बेटी सुहानी मुझे देखते ही जोरों से ''चाचा'' कहती हुई मुझसे लिपट गयी। मैंने उसके सिर पर

हाथ फेरते हुए उसे सांत्वना दी लेकिन शव को देखते ही मैं भी शव से लिपट पड़ा।

मैं चौहान जी की बड़ी बेटी ख्याति और बेटे अथर्व के बारे में पता करना चाहता था जो कि आसपास नहीं दिख रहे थे। तभी शव को उठाने कर टिकटी पर लिटाने की प्रक्रिया शुरु हो गयी।

शव यात्रा शुरू हुई तो अथर्व मुझे दिखाई पड़ा। मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा। फिर शव को कंधा दिया। मैंने पाया कि वहाँ पर अपार जन–समुदाय उमड़ पड़ा था। पता चला कि शवदाह का कार्यक्रम उन्नाव जिले के शुक्लागंज में गंगा नदी के बलुवा घाट पर संपन्न होगा।

शव को शव वाहन में रखा गया और उस के साथ चौहान जी के घर के लोग उस वाहन में बैठे। मैं भी शव यात्रा के लिए जा रही बसों में से एक में बैठ गया। बस अपने गंतव्य की ओर बढ़ी जा रही थी। सुबह के 10:31 बज रहे थे। तब मैंने सत्येंद्र जी और साहित्यकार शिव मूर्ति जी को 'टैक्स्ट मैसेज' किया कि शव यात्रा शुक्लागंज के लिए रवाना हो चुकी है।

कुछ देर बाद शिव मूर्ति जी का फोन आया कि वे दादूपुर पहुंच गए हैं। उन्होंने पूछा कि आपकी बस कितना आगे निकल चुकी है? मैंने उन्हें बतलाया लगभग 10 किलोमीटर। उन्होंने कहा कि आपसे शुक्लागंज में ही भेंट होगी।

बस में बैठे–बैठे मैंने देहरादून में कार्यरत चौहान जी के बैच के आई.ए.एस. एवं आई.एफ.एस. मित्रों डॉ. रणवीर सिंह, श्री अनूप मलिक एवं श्री अनिल भारद्वाज जी को भी मैसेज किये।

चौहान जी नवंबर 2014 में लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी मसूरी में 3 सप्ताह के रिफ्रेशर प्रोग्राम के लिए आए थे। उस अवधि में पड़े दोनों रविवारों को यानी 14 नवंबर और 21 नवंबर को वे मसूरी से मेरे देहरादून स्थित आवास पर पहुंचे थे। तत्पश्चात् अपने बैच के डॉक्टर रणवीर सिंह एवं श्री अनिल भारद्वाज से मुझे मिलवाने उनके घरों में भी ले गए थे। वाइल्डलाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया में कार्यरत श्री अनिल भारद्वाज केरल कैडर के आई.एफ.एस. अधिकारी थे। वे देहरादून में प्रतिनियुक्ति पर आये थे। डॉ. रणवीर सिंह जी देहरादून में ही अपर मुख्य सचिव थे।

दिनांक 21 नवंबर, 2014 को जब चौहान जी मेरे आवास पर आये तो बोले, "चलो, कुछ पुरानी कविताएं सुनाओ जो तुम ने हम दोनों के नैनीताल में साथ–साथ रहने के दिनों में लिखी थी।"

मेरे द्वारा कविताएं सुनाये जाने पर उन्होंने कुछ कविताओं के कविता–पाठ की वीडियो रिकॉर्डिंग अपने मोबाइल से की और उसे यूट्यूब पर डाल दिया। यह रिकॉर्डिंग करते हुए वे मेरे निवास पर लगे एक बड़े शीशे के सामने बैठ गए जिसमें उनका चेहरा भी दिखाई पड़ रहा है।

...ग्रीष्म ऋतु होने के कारण गंगा की धारा अपने ऊँचे तटों को छोड़ कर नीचे गहराई में चली गई थी। यहाँ तक कि उसने अपने दोनों ओर अत्यंत चौड़ा बलुआ आँचल भी छोड़ दिया है। वहाँ तक पहुँचने के लिये ढलान पर कच्चा रास्ता बना हुआ है।

शव को लिये लोग उस पगडंडी से नीचे उतर रहे हैं। गंगा पर चिता सजाने की तैयारी हो रही है। मैं भी लकड़ियों के वाहन से लकड़ी का एक गिल्टा उतार कर कंधे पर रखता हूं और उसे लेकर वहां तक पहुंचाता हूं।

चौहान जी के किशोर पुत्र अथर्व के कंधे पर हाथ रखता हूं। चौहान जी के जो संबंधी मुझे पहचानते हैं, वे मेरी ओर प्रश्न भरी निगाहों से देखते हैं कि मैं वहां पर अचानक कैसे पहुंच गया। मैं उनके प्रश्नों के उत्तर देता हूं कि कुछ माह हुए बैंक ने अचानक मेरा स्थानांतरण लखनऊ कर दिया था। यह भी संयोग ही है कि यदि मैं देहरादून में ही पोस्टेड होता तो शायद समय पर पता ना चल पाता और यदि पता चलता भी तो अंत्येष्टि में शामिल होने समय पर पहुंच भी पाता या नहीं?

उस स्थिति में उन्हें कंधा न दे पाने का मलाल वैसे ही ज़िंदगी भर रहता जैसे मन में यह मलाल रह गया है। कि दिनाँक 27 फरवरी, 2016 (शनिवार) को साहित्य अकादमी, दिल्ली के रवींद्र भवन में डॉ. नामवर सिंह, केदारनाथ सिंह और अखिलेश आदि की उपस्थिति में चौहान जी को 'रेवांत साहित्य सम्मान' दिए जाने के अवसर पर मैं नहीं पहुंच सका रेल में तत्काल सेवा के द्वारा 26 फरवरी, 2016 की रात्रि को लखनऊ से दिल्ली जाने के लिए मैंने आरक्षण करा लिया था किंतु बैंक से स्टेशन लीव ना मिल पाने के कारण मैं दिल्ली ना जा सका था।

चौहान जी की मृत देह से वस्त्र उतारे जा रहे हैं। ब्लेड से वस्त्रों को काटकर निकाला जा रहा है। मैं भी उनके दाहिने हाथ में बंधा हुआ काला डोरा काटता हूं। तत्पश्चात् उनके शरीर का अंतिम वस्त्र, उनका अधोवस्त्र, उतारता हूँ. ऐसा करते हुए मुझे पीड़ा भरी जैसी अनुभूति हुई–उसे शब्दों में उतारना मेरे लिये बहुत कठिन है।

शिव मूर्ति जी का फोन आता है, "आप कहां पर हैं? दिखाई नहीं पड़ रहे।"

मैं उन्हें जवाब देता हूं कि मैं गंगा नदी के ऊँचे तट से नीचे उतर कर, उसकी धारा के किनारे रेतीले तट पर सजायी जाती हुई चिता के पास हूँ।

मैं वहाँ से ऊपर पहुँचता हूँ। शिवमूर्ति जी, अखिलेश तथा एक अन्य सज्जन खड़े हुए मिलते हैं जिन्हें मैं नहीं पहचानता। यह परिचय करने का समय नहीं। वे लोग कहते हैं कि धूप बहुत है। आइए, पेड़ के नीचे छाया में खड़े होते हैं पर मैं कहता हूं कि मैं शव के पास नीचे जा रहा हूं और मैं फिर से सजायी जा रही चिता के पास पहुंच जाता हैं।

चिता को उमेश जी का छोटा भाई रमेश तथा पुत्र अथर्व अग्नि दे रहे हैं। मैं 'कालीकट के बादशाह' को उत्तर भारत से लेकर कन्याकुमारी तक को जोड़ने वाले अद्वितीय पुल (न भूतो न भविष्यति) को अग्नि में समर्पित होते हुए देख रहा हूँ।

देखता हूँ कि एक व्यक्ति कई फोटोग्राफ ले चुका है और वीडियो भी बना रहा है। मैं उससे पूछता हूं कि किस अखबार से हो? वह कहता है, ''नहीं, नहीं, मैं तो केरल से आया हूँ। मेरा नाम रॉय है।''

मैं उसे पहचान लेता हूँ। मैं उससे कहता हूं कि मैं तो उसके घर आ चुका हूं तो सहसा उसे यकीन नहीं होता। फिर में उसे बतलाता हूं कि उसकी पत्नी, दो बेटियों और रेवेन्यू विभाग में कार्यरत उसके माता–पिता जी से भी मैं मिल चुका हूँ।

मेरे ऐसा कहने पर वह मेरी स्मरण शक्ति की प्रशंसा करता है और बतलाता है कि उसके माता–पिता अभी जीवित हैं।

चिता की लपटें तेज हो चुकी हैं। मैं भी अन्य लोगों के साथ गंगा नदी से बाहर निकलकर ऊपर चला आता हूँ और चिता की ओर देखता रहता हूँ।

तभी सत्येंद्र जी आप पहुंचते हैं। उनके साथ फिर चिता तक जाता हूँ। वे पास ही में पड़ी रह गयी एक पतली–सी लकड़ी उठा लेते हैं और चिंता को देते हैं। इसके बाद वे चौहान जी के परिवार के सदस्यों से मिलने लगते हैं।

कुछ देर बाद सत्येंद्र जी कहते हैं कि चलो, चलते हैं। मैं भी उनकी गाड़ी में बैठ जाता हूँ। रास्ते पर हम दोनों नैनीताल में चौहान जी से जुड़ी सन् 1984 से 1986 तक की स्मृतियों में खो जाते हैं। रास्ते में चौहान जी के गांव दादूपुर पहुंचते हैं और नंदिता भाभी से मिलते हैं।

सत्येंद्र जी लखनऊ लौटना चाहते हैं। वह मुझसे भी साथ चलने को कहते हैं मगर मैं मना कर देता हूँ। अभी लौटने का मेरा मन नहीं है। मैं सत्येंद्र जी से विदा लेकर पुनः चौहान जी के घर पहुंचता हूँ। मेरे पहुंचने की सूचना मिलते ही घर के भीतर से उनकी बेटी ख्याति तेजी से दौड़ती हुई निकल कर आती है और ''चाचा`...'' कहती हुई मुझसे लिपट जाती है। मैं उसे सांत्वना देता हूँ।

कुछ देर बाद उस घर के बाहर बैठा हुआ मैं अपने मोबाइल का मैसेज बॉक्स खोलता हूँ। जैसा कि पहले भी देख चुका हूं कि दिनांक 27 फरवरी, 2016 को साहित्य अकादमी, दिल्ली के रवींद्र सभागार में चौहान जी को रेवांत सम्मान मिलने के अवसर पर चाह कर भी मैं वहाँ ना पहुँच सका था। तब मैंने उन्हें मैसेज किया था कि रेल में रिज़र्वेशन होने के बावजूद मैं बैंक से स्टेशन लीव न मिलने के कारण वहाँ नहीं पहुंच सका। इस पर उन्होंने जवाबी मैसेज भेजा था।

''कोई बात नहीं.... लखनऊ में ही मिलूंगा...... लेकिन ट्रीटमेंट कंप्लीट होने के बाद.... अर्थात 15 अप्रैल के बाद।''

अपने वायदे के अनुसार वे इस बार लखनऊ में मिले तो थे मगर इस बार वे अपनी देर में नहीं थे। इतना लम्बा समय बीत जाने के बाद भी मुझे लगता है कि वे मेरे आसपास ही उपस्थित हैं और मुझ से यह संस्मरण लिख रहे हैं।

चौहान जी नवंबर 2014 में लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी मसूरी में 3 सप्ताह के रिफ्रेशर प्रोग्राम के लिए आए थे। उस अवधि में पड़े दोनों रविवारों को यानि 14 नवंबर और 21 नवंबर को वे मसूरी से मेरे देहरादून स्थित आवास पर पहुंचे थे। तत्पश्चात् अपने बैच के डॉक्टर रणवीर सिंह एवं श्री अनिल भारद्वाज से मुझे मिलवाने उनके घरों में भी ले गए थे। वाइल्डलाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया में कार्यरत श्री अनिल भारद्वाज केरल कैडर के आई.एफ. एस. अधिकारी थे। वे देहरादून में प्रतिनियुक्ति पर आये थे। डॉ. रणवीर सिंह जी देहरादून में ही अपर मुख्य सचिव थे।

•

पता : 26 ए, दानपुर, रुद्रपुर–263153
(उत्तराखंड)
मो. : 9012710777

अविस्मरणीय अभिनेत्री लिव उल्मैन से गौतम चटर्जी का संवाद

'इन्ट्यूशन ही मेरी शक्ति है'

विश्व सिनेमा की किंवदंती हो चुकीं 83 वर्षीया लिव उल्मैन का जन्म 16 दिसम्बर, 1938 को टोकियो में हुआ था। लेकिन माता–पिता के साथ उनकी नागरिकता नॉर्वे की हैं। 26 साल की थी जब वे अपनी मित्र बीबी आन्द्रेसां के साथ इंगमार बर्गमैन से स्वीडेन के एक रास्ते में मिली और फिर उनके साथ फिल्म करने का सिलसिला शुरु हो गया। उन्होंने बर्गमैन के साथ कुल 11 फिल्में कीं। 1966 में उन्होंने बर्गमैन के साथ पहली फिल्म की 'पर्सोना' और 2003 में उनके साथ अन्तिम फिल्म की 'साराबैंड'। शूटिंग के दौरान 2003 में उनकी उम्र 64 वर्ष थी, लिव की ख्याति बर्गमैन की फिल्मों में उनके अविस्मरणीय अभिनय के कारण ही दुनिया भर में हुई और उन्हें उनके समय और हर समय की उत्कृष्ट कलाकार माना गया। वे बर्गमैन की पत्नी भी रही हैं। उनकी पहली फिल्म 'फूल्स इन द माउन्टेन्स' 1957 में प्रदर्शित हुई थी जिसमें उन्हें क्रेडिट नहीं दिया गया था। नॉर्वे की इस फिल्म के आरम्भिक दृश्य में वे कुछ देर के लिए दिखती हैं। 2012 में उन्होंने अन्तिम फिल्म की 'टू लाइव्ज' 1992 से 2014 तक उन्होंने पांच फिल्मों का निर्देशन भी किया, इनमें फेथलेस (2000) की विशेष चर्चा हुई। अनूठे ढ़ंग से अभिनीत उनकी फिल्मों में प्रमुख हैं, 'पर्सोना', 'आवर ऑफ दी वूल्फ', 'शेम', 'क्राइज ऐंड विस्पर्स', 'ऑटम सोनाटा', 'फेस टू फेस और सीन्स फ्रॉम ए मैरेज'। लिव की बेटी लिन लेखिका हैं। लिव ने तीन किताबें भी लिखीं हैं, 'चेन्जिंग', 'चौएसेस' और 'वांडलुंगेन'।

सम्प्रति गोवा में होने वाला भारत का अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह 2003 तक नयी दिल्ली में 10 से 19 अक्टूबर तक, और उससे पहले 10 से 20 जनवरी तक हुआ करता था। यह सुखद संयोग है कि नयी दिल्ली में हुए इस अन्तिम (34वें) फिल्म समारोह में 14 अक्टूबर की शाम सिरीफोर्ट ऑडिटोरियम में लाइफ टाइम ऐचीवमेन्ट अवार्ड लिव को दिया गया। बुद्धदेव दासगुप्ता, मणि रत्नम और शेखर कपूर की जुरी ने यह अवार्ड उन्हें शत्रुघ्न सिन्हा के हाथों से प्रदान किया। शबाना आजमी ने कहा कि जैसे रील के बिना फिल्म की कल्पना नहीं की जा सकती वैसे ही लिव के बिना सिनेमा की कल्पना नहीं की जा सकती है। 17 अक्टूबर को वे ताजमहल

देखने आगरा गयीं। वे इससे पहले भी भारत आ चुकी हैं एक सामाजिक कार्यकर्त्री की तरह। 16 अक्टूबर को एक संगोष्ठी होटल ताज में शाम 6.30 से रखी गयी थी जिसमें वे मुख्य वक्ता थीं। हमारी बातचीत देर तक इसी संगोष्ठी से पहले और डिनर के बाद हुई। पिछली शाम 1997 में उन पर बनी फिल्म 'लिव उल्मैन : सीन्स फ्रॉम ए लाइफ' दिखायी गयी, जिसका निर्देशन एडवर्ड हैम्ब्रो ने किया है। 2003 में मैं राष्ट्रीय सहारा में कार्यरत था। संगोष्ठी से पहले दो घंटे के लिए हम होटल ताज में साथ थे। बातचीत में साथ साथ ...

पहली फिल्म में मैंने सिर्फ एक शब्द कहा था। और यह दूसरी फिल्म मेरे बहुत सारे शब्दों से ही शुरु होती थी। तो मैं नर्वस हो सकती थी। शॉट देने के बाद ध्यान गया कि मैं नर्वस क्यों नहीं हुई। क्या बहुत सारी फिल्में और रंगमंच कर लेने के कारण, क्या डॉल्स हाउस के कारण जिसमें मैं काफी कॉन्फिडेन्ट मानी गयी थी या इंगमार के कारण ? इंगमार ने ही बताया इन्ट्यूशन के कारण। यह हमें शक्ति भी देता है और सेफ भी रखता है। सिर्फ इसी की बात सुननी चाहिए। हालांकि पर्सोना के दिनों में मैं, बीबी और इंगमार अक्सर ही इस विषय पर देर तक बातें किया करते थे। अक्सर ही इसी विषय पर मौन रहा करते थे।

मुझे खुशी है कि आप निश्चिन्त हैं कि मैं यह बातचीत अखबार के उन फिल्म पत्रकारों की तरह नहीं करने जा रहा जिनसे आप पिछले दो दिनों से मिल रहीं है और नहीं मिलना चाह रहीं ...

बिल्कुल नहीं। पहली बात तो यह कि कल आप से परिचय कराते हुए कुमार शहानी ने आपके बारे में बता दिया था, वे अभी इस संगोष्ठी में आने वाले हैं, और फिर इन्ट्यूशन से लग गया कि आप फिल्मों में उसी तरह गहन रूप से हैं जैसे कि मैं।

अपनी कार्यशैली का मुख्य श्रेय इंगमार भी इन्ट्यूशन को देते थे ...

उसी के बूते वे फिल्में बनाते गये। वही उनकी शक्ति है। मुझे भी लगा है कि थॉट की तुलना में इन्ट्यूशन मनुष्य की प्रथम, अन्तिम और आश्वस्त शक्ति है। उनके सम्पर्क में रहकर ही मेरा ध्यान अपने इस गिफ्ट की ओर गया। सोचने में जो समय निहित है वह असुरक्षित करता है जबकि इन्ट्यूशन या अन्तर्दृष्टि हमें सुरक्षित रखती है, रचना और जीवन दोनों स्तरों पर। यूनेस्को की ओर से सामाजिक काम के सिलसिले में एक बार मैं कोलकाता से गुजर रही थी। एक रात मैं और एक श्रमजीवी गरीब महिला एक ही कम्बल में सोयी थीं। कोलकाता की रात थी। उस रात ही मैं एक कम्बल में सोयी दो औरतों को थर्ड पर्सन की ओर से देख पाने में समर्थ हो सकी थी। यह अन्तर्दृष्टि के कारण ही था।

और यह उस वक्त सबसे ज्यादा काम आता होगा जब आप अकेले कैमरे के आगे होती हैं और लेंस को देखती हैं ...

मैं समझ गयी आप 'आवर ऑफ द वूल्फ' के प्रथम दृश्य की बात कर रहे। यह मेरी दूसरी फिल्म थी इंगमार के साथ मैं गर्भवती थी और इंगमार से अलग हो गयी थी। अलग होने के बावजूद उनकी शिक्षा मेरे साथ थी। या कहें, वे किसी न किसी रूप में हमेशा मेरे साथ रहे हैं। उन्होंने कहा था हम कलाकार के रूप में तो फिल्म साथ कर ही सकते हैं। उन्होंने कहा था, आपको स्टोरी नरेट करनी है लेंस को। बस। पहली फिल्म में मैंने सिर्फ एक शब्द कहा था। और यह दूसरी फिल्म मेरे बहुत सारे शब्दों से ही शुरु होती थी। तो मैं नर्वस हो सकती थी। शॉट देने के बाद ध्यान गया कि मैं नर्वस क्यों नहीं हुई। क्या बहुत सारी फिल्में और रंगमंच कर लेने के कारण, क्या डॉल्स हाउस के कारण जिसमें मैं काफी कॉन्फिडेन्ट मानी गयी थी या इंगमार के कारण ? इंगमार ने ही बताया इन्ट्यूशन के कारण। यह हमें शक्ति भी देता है और सेफ भी रखता है। सिर्फ इसी की बात सुननी चाहिए। हालांकि पर्सोना के दिनों में मैं, बीबी और इंगमार अक्सर ही इस विषय पर देर तक बातें किया करते थे। अक्सर ही इसी विषय पर मौन रहा करते थे।

अभी अभी आपने स्वीडेन के टेलीविजन के लिए 'साराबैंड' पूरी की। यह भी इंगमार के साथ है। यह 'सीन्स फ्रॉम ए मैरेज' के आगे की कहानी है ?

जी। यह 1973 में बनी 'सीन्स फ्रॉम ए मैरेज' का सीक्वेल है। इसमें तीस साल बाद मारिआने अपने बीते दिनों को याद करती है और अपने पूर्व पति जोहान के घर जाती है। यह इंगमार की अन्तिम फिल्म है जिसे उन्होंने ब्रूनो प्रियानी के साथ मिल कर लिखा है। इंगमार एक लम्बे समय से फॉरो द्वीप में रह रहे हैं जहां मैं एक बार उनसे मिलने गयी थी। शूटिंग के सिलसिले में जैसे पर्सोना के समय, मैं वहां कई बार जा चुकी हूं। शादी के बाद तो मैं साथ ही वहां रही हूं। लेकिन अलग होने के बाद मैं वहां एक बार गयी और उस घर को करीब से फिर से देखा जहां अब उनकी पत्नी रह रहीं थीं। उन्होंने घर का वह सब कुछ भी नहीं बदला था जिसे मैंने डिजाइन किया था जैसे दरवाजे और खिड़कियों के पर्दे। मुझे खुशी हुई थी। लौट कर मैंने अपनी किताब लिखी 'चेन्जिंग'। फिल्म में भी मारिआने जोहान के घर जाती है तीस साल बाद। 1973 में मैंने और अर्लैन्ड जोसेफ्सन ने फिल्म 'सीन्स फ्रॉम ए मैरेज' में पति पत्नी की भूमिका निभाई थी। और अब इस फिल्म में हम दोनों दोबारा मिल रहे हैं। जीवन में तो मिलते ही रहते हैं हम दोनों। हम बहुत अच्छे मित्र हैं। लेकिन इस सीक्वेल में हम बहुत सालों बाद मिल रहे हैं। जब मैं उनके घर जाती हूं तब तक दोनों वृद्ध हो चुके हैं। 109 मिनट की यह फिल्म स्वीडेन सहित कई देशों के कोलाबोरेशन से बनी है स्वीडेन के टेलीविजन के लिए लेकिन अब यह दो घंटे की फिल्म के रूप में कई देशों के सिनेमा मे दिखाई जा रही है। फिल्म में मैं कुछ अधिक उम्र की दिखूंगी आपको।

जी। यह 1973 में बनी 'सीन्स फ्रॉम ए मैरेज' का सीक्वेल है। इसमें तीस साल बाद मारिआने अपने बीते दिनों को याद करती है और अपने पूर्व पति जोहान के घर जाती है। यह इंगमार की अन्तिम फिल्म है जिसे उन्होंने ब्रूनो प्रियानी के साथ मिल कर लिखा है। इंगमार एक लम्बे समय से फॉरो द्वीप में रह रहे हैं जहां मैं एक बार उनसे मिलने गयी थी। शूटिंग के सिलसिले में जैसे पर्सोना के समय, मैं वहां कई बार जा चुकी हूं। शादी के बाद तो मैं साथ ही वहां रही हूं। लेकिन अलग होने के बाद मैं वहां एक बार गयी और उस घर को करीब से फिर से देखा जहां अब उनकी पत्नी रह रहीं थीं। उन्होंने घर का वह सब कुछ भी नहीं बदला था जिसे मैंने डिजाइन किया था जैसे दरवाजे और खिड़कियों के पर्दे। मुझे खुशी हुई थी। लौट कर मैंने अपनी किताब लिखी 'चेन्जिंग'।

अपने जीवन पर सघन संवेदना के साथ लिखी आपकी किताब 'चेन्जिंग' में काफी कुछ आपने लिखा है, बेबाकी से ...

आपने किताब पढ़ी है ?

जी दो–दो बार ...

मुझे खुशी हो रही

अभी–अभी आपकी निर्देशित फिल्म हमने देखी 'फेथलेस' जो आपने तीन साल पहले बनायी है। इसे इंगमार ने लिखा है और इसकी नायिका का नाम भी मारिआने वोग्लर है जो एक फिल्म अभिनेत्री का चरित्र निभा रही, जैसे आपने पर्सोना में ऐलिजाबेथ वोग्लर का चरित्र निभाया था जो एक रंगमंच अभिनेत्री है। इस फिल्म में भी अर्लैन्ड जोसेफ्सन मुख्य भूमिका में हैं ...

फिल्म में एक चरित्र है वृद्ध फिल्म निर्देशक का जो कल्पना में अपनी युवा फिल्म नायिका को इन्टरव्यू करता है। यह है फिल्म की इनीशियल लाइन। फिल्म देखते ही लोग समझ जाते हैं कि यह निर्देशक और कोई नहीं स्वयं इंगमार हैं। चरित्र का नाम भी बर्गमैन है। हालांकि मैने इंगमार से कह रखा था कि वे शूट पर कभी नहीं आयेंगे फिर भी एक दिन आ ही गये।

लीना एन्द्रे ने नायिका की भूमिका निभाई है जिसे इन्टरव्यू करते हैं अर्लैन्ड। फिल्म को देखते हुए बर्गमैन

की फिल्मों–सी फील आती है चाहे वह आउटडोर लोकेशन हो या फिर इन्डोर के रंग और कॉस्ट्यूम, जैसे क्राइज ऐंन्ड विस्पर्स के लाल, सफेद और काला। अर्लैन्ड युवा नायिका से बात करते हुए एकदम 'आफ्टर दी रिहर्सल' की तरह दिखते हैं। एक दृश्य में तो लगता है मानो सचमुच इंगमार बैठ कर बात कर रहे हैं जब अर्लैन्ड घर की खिड़की की मुंडेर पर आराम से पैर फैलाकर नायिका से बात कर रहे हैं। फॉरो में उनके घर की खिड़की का चित्र उभर आता है।

बिल्कुल सही कह रहे हैं आप। दरअसल मुझे देखते ही या मेरे काम को देखते ही लोगों की चेतना में इंगमार स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं। फिल्म की पटकथा में ही वे हैं इसलिए उनकी अदृश्य उपस्थिति अनिवार्य रूप से फील हो जाती है। हालांकि मैंने कोशिश की है कि फिल्म में उनसे अलग मेरी उपस्थिति दिखे जैसे पति पत्नी के अंतरंग दृश्यों में ...

यहां तक कि मां बेटी के दृश्य के साथ जब फ्रॉक पहने बच्ची को दिखाया जाता है तो ऑटम सोनाटा के आपके बचपन का दृश्य दिख जाता है ...

इसलिए कि सभी की तरह आपकी चेतना में भी उनके फिल्मों के दृश्य अमिट रूप से अंकित हो चुके हैं। आप सभी मेरी तरह इंगमार को प्यार करते हैं। अब मैं आपको ऐसे दृश्यों की पूरी एक लिस्ट दे सकती हूं जिनमें मेरी मौलिकता है। जैसे आंखें बन्द किये पति के कंधे पर सिर रख कर आंखें खोलकर पत्नी का देर तक सोचना, चिन्तित होना। फॉरो के जिस दृश्य का आपने जिक्र किया उससे जुड़ा एक मज़ेदार वाकया है। लेकिन उससे पहले बता दें कि 1996 में जब मैं अपनी फिल्म प्राइवेट कन्फेशन की एडिटिंग कर रही थी उसी समय इंगमार ने फेथलेस डायरेक्ट करने का प्रस्ताव रखा था और मैंने कहा था कि आप बीच में नहीं आयेंगे, यह मेरी फिल्म होगी। फॉरो में अक्सर ही इंगमार अपनी खिड़की के पास बैठ कर समुद्र के किनारे को देखते हैं और वहां यानी बीच पर टहलते हैं। मैंने यह दृश्य अर्लैन्ड से कराया था। क्योंकि वे बर्गमैन का रोल कर रहे थे। इंगमार ने देखा तो कहा यह दृश्य हटा दो। यह मेरी व्यक्तिगत जीवनशैली है। मैंने कहा, यह मेरी फिल्म है, दृश्य रहेगा। उन्होंने कहा, तो फिर मैं कान्स (जहां फिल्म समारोह होता है) को फोन कर कह दूंगा कि वे तुम्हारी फिल्म स्वीकार न करे। मैंने वह दृश्य हटा दिया। मजेदार बात यह है कि बाद में इंगमार ने खुद बीबीसी से अपने ऊपर एक वृत्तचित्र बनवाया जिसमें उन्होंने वो दृश्य रखा।

पर्सोना का अनुभव कैसा था ?

अद्भुत

क्राइज ऐंड विस्पर्स का ?

जैसे किसी बाग में पिकनिक मना रहे

ऑटम सोनाटा ?

चैलेंजिंग और अनुभव लेने का इन्ग्रिड से

दी सर्पेन्ट्स एग ?

दिलचस्प

शेम ?

बेस्ट।

बीबी, इन्ग्रिड थूलिन, हैरियेट ऐन्डर्सन में किसका साथ सबसे अच्छा लगा एक सह कलाकार के रूप में ?

बीबी का, भले ही मुझसे काफी सीनियर हैं। (बीबी आन्द्रेसां का देहान्त 2019 में हुआ)

भारत में यदि आपको किसी फिल्म में काम करना हो तो क्या आप करेंगी ? भारतीय या गैरभारतीय ...

करुंगी यदि यदि एक मिनट में दस कट न हो (देर तक हँसती हैं)

•

पता : एन–11/38, बी, रानीपुर, महमूदगंज,
वाराणसी–221010
मो. : 9795178699, 7052306296

टारगेट

❑ कल्पना मनोरमा

बहनों का कमरा चमक चुका था। माँ की ओर से बच्चों को हिदायतें दी जा चुकी थीं कि दिदिया के सामने किसी भी प्रकार की कमी–बेसी की बात न छेड़ी जाए। बच्चों की ओर से अम्मा से वादा लिया जा चुका था कि वे बाबू से झगड़ें नहीं और शिकायतों की पोटली खोलकर न बैठें। अगले कुछ दिनों के लिए सबकी प्यारी दिदिया अर्थात बनिता मायके आ रही थी।

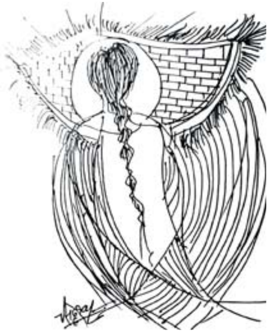

अगले दिन ग्यारह बजते–बजते बनिता घर पहुँच जायेगी इसलिए उसकी बहनें घर को व्यवस्थित करने की आख़िरी खेप में जुटी थीं। मीतू पलंग पर नई चादर बिछा रही थी। नीतू साड़ी के पर्दों की सिलवटें ठीक कर रही थी। वहीं छोटा भाई जतिन आवारा बछेड़े–सा डोलता, बहनों को चिढ़ाता, कभी अलमारी से कपड़े खींचता तो कूड़े के ढेर में पाँव मारता फिर रहा था।

"पर्दों की धूल कितनी भी झाड़ लो लेकिन उन घटनाओं का क्या जो जिद्दी दाग–सी मन पर चिपकी हैं। कितनी दुःखी होकर गयी थी बिनी उस बार, याद है न तुम लोगों को? जरा सोच समझकर चर्चाएँ छेड़ना। खास तौर से अपने बाप के सामने।" माँ यह निर्देश देकर रसोई में जा लगी थीं।

"तू क्या सुन रहा है? अपनी अकर्मण्यता लेकर एक किनारे बैठ क्यों नहीं जाता। ज्यादा दिमाग खराब करेगा तो अभी मार भी खा जाएगा।" नीतू जतिन पर खीझी।

"पापा! नीतू दीदी मुझे सुबह से डांट रही हैं।" जतिन गला फाड़ कर डकराया।

"मर अभागे! बहनों को देखकर तुझे कभी खुशी नहीं होती।"

"और तुझे? क्या जानती नहीं? अगर बाबू ने इसका डकराना सुन लिया तो

क्या समेट पाओगी क्लेश? बेमतलब की डांट खाना तू कब बंद करेगी?" मीतू ने नीतू की चोटी खींचते हुए कहा।

"उई माँ, मरो! तुम सब, मैं कुछ नहीं करती।" मुँह फुलाकर नीतू कमरे में चली गयी।

"साढ़े दस बजे तक बिनी बस स्टैंड पहुँच जायेगी। तुम्हारे बाप सज–धज ही नहीं पाएँगे। जाने क्यों दीं भगवान ने इन्हें लड़कियाँ? भिखारी हीरे का मोल नहीं जानता।" रसोई में बैठी माँ बिन पानी की मछली–सी छटपटाई।

"अम्मा! दिदिया को हम दोनों लिवा लाएँ?" मीतू बोली।

"जाओगी तो तुम भी पैदल ही न! कहा था मामा के घर साइकिल सीख लो।"

"अम्मा हम आ गये!" बनिता ने घर में घुसते हुए ज़ोर से कहा।

"अरे! कैसे? क्या पैदल ही चली आयीं वहाँ से यहाँ तक?" माँ, चौके से निकल कर बोलीं।

"नहीं, राघव चाचा मिल गये थे। मुझे देखा तो हँसने लगे। फिर मोटर साईकिल से घर छोड़ गए।"

"चलो अच्छा हुआ! राघव अपनी बिटिया को भी बहुत मानते हैं।" माँ ने बनिता को गले से लगा लिया।

"हम तो बस अड्डे आने वाले थे।" बाहर से आते हुए पिता ने कहा लेकिन कोई बोला नहीं। पिता चौकी पर बैठ गये। बहनों का चहकना बंद हो गया। पिछले आधे घंटे से जो हाहा, हूहू हो रही थी, उसका विसर्जन क्षण में होता देख माँ मौन हो गयीं। बनिता ने माहौल के धूसरपन को हटाने के लिए अपना बैग खोला और भाई–बहनों को उपहार देने लगी। जिन्हें वह पिछले एक साल से जोड़ रही थी।

"मीतू, ये ले तेरा ब्रेसलेट। नीतू तेरा मेकअप किट। और जतिन तू! इसे पहन कर दिखा। लाना तो बहुत पहले था लेकिन मैंने सोचा ऐसा–वैसा स्वेटर अपने भाई को देने से देर भली। क्यों जतिन?"

फिरोजी स्वेटर की नरमाहट गालों पर महसूस करते हुए बनिता ने स्वेटर जतिन की ओर बढ़ा दिया। साँवले भाई ने जब उसे पहना तो काले बादलों के बीच आसमान–सा खिल उठा। दूर बैठे पिता भी मंद–मंद मुस्करा पड़े। तीन बेटियों के बीच जन्मा जतिन, पिता के लिए खुदा की नेमत था। उनके जीवन के सारे मंसूबे बेटे के इर्दगिर्द ही बुने जा रहे थे। बेटियों को पिता के सामने हँसने–बोलने जैसी बात हिमालय पर झंडा फहराने के समान थी। आज जब अपने समक्ष पिता को मुस्कुराते देखा तो बनिता उनकी पितृसत्तात्मक कर्कशता भूल गयी। उसे दिवाली पर माँ के घर आना सार्थक लगने लगा था।

"बिटिया इतना खर्चा क्यों करती हो? मायके से तुझे मिलना तो कुछ है नहीं। वैसे खुले हाथ लगते तो बड़े अच्छे हैं मगर अपने वक्त पर वे खाली रहें, यह भी तो ठीक नहीं। माना अभी तू माँ नहीं बनी है। हमेशा तो ऐसा रहेगा नहीं। ब्याही बेटियाँ गरीब हों तो मायके वाले भी उन्हें पूछते नहीं। तुझे ये बात मालूम होनी चाहिए। मैं नहीं चाहती भविष्य में अपने किए के प्रति बदला पाने की तुझे तमन्ना जागे और आज लेने वाला, कल देने से मुकर जाए। तब क्या! करेगी ?" बनिता की माँ ने कसमसाते हुए कहा।

"अम्मा आगे से ध्यान रखूँगी। अभी एक कप चाय मिलेगी?'' कहते हुए लिड वाली चायदानी उसने माँ को भी पकड़ा दी। चायदानी देखकर माँ की आँखें चमक उठीं। कारण जिस चीज को वे कई वर्ष पहले खरीदना चाहती थीं, उसे पाकर वे निहाल थीं। चायदानी उलट–पलट कर देखने के बाद माँ ने कीमत पूछी। बेटी कुछ बोलती उसके पहले पिता बोल पड़े।

''बनिता, चिंतामत करना! तुम्हारे किए का ध्यान बराबर रखा जाएगा। आख़िर जतिन इकलौता वारिस है हमारा। तुम लोग अभी उसे खुश रखोगी तो मेरे बाद तुम सबको भी पूछता रहेगा।" पिता ने जतिन की ओर देखते हुए ऐसे कहा जैसे उसकी सहमति माँग रहे हों।

"समय किसके पास होगा! मत पूछें।" पिता के नहले पर दहला जमाते हुए नीतू बुदबुदाई।

"मैं कोई बखेड़ा नहीं चाहती।" कहते हुए बनिता ने उसका हाथ दबा दिया।

"अम्मा, आपने बाबू को कभी नहीं बताया? उन की बेटियों को वारिस बनने का कोई शौक नहीं लेकिन हर पल पराये होने का एहसास कराना क्या इतना जरूरी है? बोलो तो आज, अभी ही लौट जाएँ?" न चाहते हुए बनिता की आँखें भरभरा पड़ीं। एक–एक पल उसे पिघले ताँबे–सा अपने सिर पर टपकता हुआ लग रहा था। माँ ने आँचल बढ़ाकर उसके आँसू पोंछ दिए। माँ कुछ बोल पाती, पिता फिर से बोल पड़े।

"हाँ हाँ, मैं सही कह रहा हूँ। इसमें चिढ़ने की बात नहीं। आजकल मैं देख रहा हूँ, बनिता की प्रवृत्ति लड़ाकू होती जा रही है। बात–बात में रोना और बतंगड़ खड़ा करना इस लड़की का शगल बनता जा रहा है। तुम ससुराल में भी इसी ढ़ंग की हो क्या? तुमने तो सास–ससुर का जीना हराम कर रखा होगा? आखिर मैंने गलत क्या कहा? अपने भाई को खुश रखोगी तो तुम लोग भी खुश बनी रहोगी। मैं तो तुम्हारे हित की बात सोचता हूँ और तुम्हें कुत्ते की ईंट जैसी लगती है। मुझे तो पान का पका पत्ता ही समझो। पर अभी हम हैं, तुम्हारे बाल–बच्चों की पढ़ाई–लिखाई देख लेंगे। ईरान से तूरान तक कहीं की सिफारिश की बात आये तुम बस एक चिट्ठी छोड़ देना। राखी–भाई दूज पर तुम्हारा भाई है ही दिलदार। क्यों बेटा!'' पिता के गर्वीले स्वर ने बेटे को पौरुषी चेतना से भर दिया। मुस्कुराता हुआ वह वहाँ से उठ गया।

"कड़वाहट में उगी–उपजी बेटियाँ भले माँ के दामन में पल जाती हैं। इसका मतलब यह कतई नहीं कि किसी की नीयत उन्हें समझ नहीं आती।" पिता की लैंगिक द्विअर्थी बातों से बनिता का मन हमेशा की तरह इस बार भी दंशित हो उठा था। उसने फिर से वापस लौट जाने के लिए कहा।

"कुछ हफ्ते पहले बरनाला वाली तेरी मौसी आई थीं। उन्होंने एक सौ का नोट और एक पचास का नोट नीतू को पकड़ाते हुए कहा था, तीनों बराबर बाँट लेना। उन्हीं के लिए शायद सिर फोड़ रही होगीं। सच्ची कहती हूँ बिटिया, बुढ़ापे की इन औलादों ने मेरा चैन हराम कर रक्खा है।" माँ अपना आँचल मुँह पर डाल सुबक पड़ीं।

"ना बिटिया! कैसी बातें करती हो। चार दिन बचे हैं त्यौहार के लोग क्या सोचेंगे। तुम चलो अन्दर बैठो, हम अभी आए।" वह पलंग पर लेटकर खिड़की से मुंडेर पर बैठी चिड़िया को देखने लगी जो उड़ने और रुके रहने में अपनी मर्जी की मालिक थी।

"कहाँ खोई हो दिदिया? इसे रोक लो प्लीज! बहुत बदतमीज़ हो गयी है। जब देखो तब मेरे पैसे उड़ा लेती है। चोरनी कहीं की।" नीतू–मीतू अपनी–अपनी गुल्लक बजाते हुए बनिता के पास पसर गईं। माँ रसोई से पकौड़ियों की प्लेट लिए आ पहुँची।

"हुआ क्या? क्यों लड़ रही हो तुम दोनों?" बनिता ने समझाने की कोशिश की पर बहनें जब झगड़ती रहीं तो उसने प्रश्नात्मक मुद्रा में माँ की ओर देखा।

"कुछ हफ्ते पहले बरनाला वाली तेरी मौसी आई थीं। उन्होंने एक सौ का नोट और एक पचास का नोट नीतू को पकड़ाते हुए कहा था, तीनों बराबर बाँट लेना। उन्हीं के लिए शायद सिर फोड़ रही होगीं। सच्ची कहती हूँ बिटिया, बुढ़ापे की इन औलादों ने मेरा चैन हराम कर रक्खा है।" माँ अपना आँचल मुँह पर डाल सुबक पड़ीं।

"माँ की असहजता बनिता को बचपन में खींच ले गयी। इस घर में आजी और पिता का राज था। दोनों ही तन–मन से स्वस्थ्य और हट्टे–कट्टे किरदार थे। अपनी–अपनी धुन के मालिक। खूंटे की गाय मेरी अम्मा हमेशा परसेवा में तत्पर निज की जिंदगी के दुःख में बसर कर रही थीं। अम्मा के साथ निर्दयता नहीं होती अगर हम बहनों की जगह वे चार बेटा पैदा कर आजी को सौंप देतीं लेकिन चाहकर भी वे ऐसा नहीं कर सकीं और आजी के 'पोता' नामक अनुष्ठानों में पिसते हुए अधमरी होती चली गयीं। आए दिन उनका फूला पेट और 'एबोर्शन' के दर्द से लुंजपुंज अम्मा को देख–देख मैं कब बड़ी हो गयी, पता ही नहीं चला। न अम्मा के पास पीड़ा से निजात पाने की कोई तरकीब थी, न मेरे पास उन्हें दुःख से उबारने की दवा। हाँ, समझदार होने पर मैं उनका गूँगा श्रोता जरूर बन गयी थी। जब वे अपनी पीड़ा मुझसे कहतीं तो मैं बस ध्यान से उन्हें सुनती रहती। जवाब देने या कोई युक्ति सुझाने की क्षमता मुझमें नहीं थी पर अपनी बात कह लेने के बाद अम्मा के चेहरे पर थोड़ा–सा संतोष जो उभरता, वही मेरा प्राप्य बन जाता। आज तक मेरे और जतिन के बीच न जाने कितने भ्रूण शिशु माँ की कोख में आए और गए, उनमें नीतू–मीतू को छोड़ दें तो बाकियों की कोई गिनती नहीं। पुत्र प्राप्ति की मूक आहुतियाँ देते–देते अम्मा स्वाहा होती चली गईं।

माँ की बिगड़ती सेहत का ख़याल न आजी को था और न ही पिता को। हजार उलझनों में घिरीं अम्मा ज़र्रा–ज़र्रा घिसती चली गयीं किन्तु आजी के लिए पोते की जोड़ी न भर पाने का मलाल उन्हें हमेशा सालता रहा था। अपनी इसी गलती में किरच–किरच बँटते हुए वे अपनी छोटी से छोटी जरूरतों के लिए भी तरसती रहीं। अम्मा जब बेमतलब डांट खातीं तो मेरा मन अगाध पीड़ा से भर जाता था। कभी साड़ी

ठीक से नहीं पहनी तो कभी पल्लू उल्टा क्यों ले लिया, कभी चुन्नटें ऊँचीं क्यों, दिन में आराम क्यों? रात में बुखार क्यों? आजी की दलीलें उनका दिन–रात पीछा करती रहती थीं। पैसे–रुपए के मामले में भी राजा–रंक वाले वाकये अम्मा के हिस्से आये थे। इसीलिए किसी मेहमान से मिले पैसे मेरे अपने नहीं, अम्मा के हो जाते थे। एक ये लोग हैं?" बनिता ख़यालों में खोई–खोई बाहों को घुटनों पर लपेटे झूल रही थी। शांत वातावरण जब पीड़ायुक्त लगने लगा तो मीतू ने ज़ोर से कहा।

"दिदिया! कुछ बोलती क्यों नहीं? कहाँ खोई हो? बताओ न इस चोरनी का क्या करूँ?" मीतू ने रोनी सूरत बनाते हुए नीतू को जोर से धकेला तो बनिता हड़बड़ा गई।

"हाँ, ये बात तो ठीक है। लेकिन तू मुझे बता न! कितने पैसों की जरूरत है?" बनिता ने उठते हुए कहा।

"रहने दो दिदिया! मैं इसी से लूँगी। इसका तो ये काम ही बन गया है, हमेशा रोती रहती हैं, रौदूँ कहीं की।"

नीतू ने उसे चिढ़ाते हुए कहा और एक दूसरे के बाल खींचते हुए चली गयीं। बनिता बहनों के क्रन्दन को देख ही रही थी कि उसकी चचेरी बहन सुमीरा उससे मिलने आ पहुँची। उसके गले में नया नेकलेस और हाथ में अनकट हीरे की अँगूठी दमक रही थी।

"सुमी ये तेरा नेकलेस बहुत सुंदर है।"

कहते हुए बनिता ने अपनी साधारण–सी जंजीर साड़ी में छिपा ली और पलंग पर उसके बैठने के लिए जगह बना दी।

"बनिता जीजी! आप तो जानती हो, अपनी बचत मैं इन्हीं सब पर खर्च करती हूँ।" सुमीरा सगर्व बोली।

"कब तक रुकने का मन है सुमी?" बनिता ने पूछा।

"बस थोड़ी–सी शॉपिंग और बची है। अगले सात–आठ महीने आ नहीं पाऊँगी इसलिए पापा भी मेरे लिए कुछ–कुछ जुटा रहे हैं।" सुमीरा अपने में झूमती हुई बोली और नीतू–मीतू से बातों में तल्लीन हो गयी। बनिता अपनी माँ के साथ बातों में लग गयी।

"ग़रीबी भले प्रार्थना से समाप्त हो सकती हो लेकिन किसी की किसी के द्वारा की गयी नाकदरी असाध्य रोगों में से एक है।" बनिता बुदबुदाई लेकिन नियति में कुछ बदलाव न आया था। दीपावली के बाद अपने बचत के पैसों से एक साड़ी मँगवा कर बनिता ससुराल लौट गयी थी। फिर भी उसके अन्दर गहरा संतोष था कि वह थोड़ा ही सही अपने–भाई बहनों को उपहारों के रूप में खुशी दे सकी थी।

"ग़रीबी भले प्रार्थना से समाप्त हो सकती हो लेकिन किसी की किसी के द्वारा की गयी नाकदरी असाध्य रोगों में से एक है।" बनिता बुदबुदाई लेकिन नियति में कुछ बदलाव न आया था। दीपावली के बाद अपने बचत के पैसों से एक साड़ी मँगवा कर बनिता ससुराल लौट गयी थी। फिर भी उसके अन्दर गहरा संतोष था कि वह थोड़ा ही सही अपने–भाई बहनों को उपहारों के रूप में खुशी दे सकी थी।

"वक्त ने किया क्या हसीं सितम, तुम रहे न तुम हम रहे न हम!" की तर्ज पर बनिता का न चाहते हुए मायके आना–जाना बंद हो चुका था। एक तो बढ़ते हुए तीन बच्चों की देखभाल में पूरी तरह उलझ चुकी थी। दूसरे मायके वालों का जीवन–सुर बदला तो वे अपनी धुन में लीन हो चले थे।

उस दिन बनिता की माँ का फोन आया था। खनकती आवाज में उन्होंने जतिन की नौकरी बैंक में लगने की बात उसे बताई थी। घर आने पर बढ़िया–सी साड़ी, बिछिया और लाख के कड़े दिलाने का वादा किया था। जिसे सुनकर बनिता झूम उठी थी। सूखी ज़मीन पर ज्यों बादल बरस पड़े हों। बहुत दिनों बाद बनिता की वह शाम संतरी हुई थी। आलू की कचौरियों के साथ बनिता ने साबूदाना की खीर भी बनाई थी। मामा की नौकरी की खुशी ज़ाहिर करने के लिए बनी खीर बच्चे चटखारे लगा कर खा रहे थे। भाई की नौकरी बनिता को साँझी खुशी लग रही थी। माँ का जीवन संतुलित हो चुका था। ये बात बनिता को सुख दे रही थी। बहनों को अच्छा घर मिल ही चुका था और अब जतिन की नौकरी भी। माने माँ की दुनिया में कष्टों का उपसंहार।

बरसात की एक दोपहर टाइम पास करने के लिए बनिता नीतू की शादी का अल्बम उलट–पुलट रही थी। खट्टी–मीठी यादों पर कभी मुस्कुरा उठती तो कभी आँखें गीली हो जातीं। जतिन की शादी में मेहमानों की साड़ियों में से एक साड़ी एक्स्ट्रा उठा लेने पर जतिन कितना नाराज हुआ

था। "दिदिया का पेट कभी भरता ही नहीं जो पायें सब उठा ले जाएँ।" जतिन की बात याद आते ही वह उसी संकोच में घिर गयी जितनी तब मेहमानों से भरे घर में बेइज्जत हुई थी। तीखी टीस दिल को सालने लगी तो एल्बम बंद कर वह खुद को संतुलित कर ही रही थी कि फोन बजा।

"हेलो, प्रणाम जीजी! किस बैंक में आपने, अपना खाता खुलवाया है?" जतिन के प्रश्न पर वह कुछ बोल न सकी थी।

"प्रणाम दिदिया! क्या हुआ ?"

"खुश रहो जतिन! तुम क्या कह रहे हो, खाता..? उसकी तो कभी जरूरत ही नहीं पड़ी मुझे।"

"अच्छा, तो ऐसा करो, कल ही 'ए बी सी बैंक' में अपना और जीजू का बचत खाता खुलवा लो। आज के समय में अपने नाम का एक खाता होना तो बहुत जरूरी है।"

"सुन जतिन! तेरे जीजू को खाता खोलने की जरूरत नहीं, उनकी तनख्वाह वाला खाता है न!"

"अरे! मेरी भोली जीजी, उस खाते में डीमेट अकाउंट की सुविधा है? नहीं ना! फिर शेयर मार्केट में जीजू पैसे कैसे इन्वेस्ट कर सकेंगे? आजकल के ट्रेंड से अवगत रहना भी तो जरूरी है। आप बस मेरे वाले बैंक में खाता, सारी सुविधाएँ मिलेंगी।'' बनिता को भाई की नियत पर भरोसा हुआ। उसने सोचा, जतिन अपनी बहन को कठिनाइयों से उबारना चाहता है। ऊपर से पिता के द्वारा कही सारी बातें 'जतिन हम बहनों का ख़याल रखेगा' सच्ची–सी लगने लगी थीं।

"इतना भी बुरा नहीं है जतिन! भला आज के युग में बहनों की कौन इतनी चिंता करता है? बाबू की वजह से बचपन में सताता रहा और अब अपनी व्यस्तता की वजह से फोन नहीं करता होगा मगर जतिन मुझे जिंदगी का गणित सिखाने के लिए तत्पर है। शेयर मार्केट वाली बात तो सच में बहुत अच्छी है, एक बार उसके दाँव–पेंच समझ आ जाएँगे तो सब ठीक हो जाएगा। मैं अपना बजट बनाना स्वयं सीखूँगी। वैसे भी खर्च करना और बचत करना दोनों अलग–अलग विषय हैं।"

भाई से बात हुए दस मिनट ही बीते थे। बनिता रिश्तेदारों की हैसियत का मानसिक अवलोकन कर अपनी भावी स्थिति पर मुस्कुरा पड़ी थी। चिंतन में मुंदी आँखें खुली तो सीधे गुलदान में लटकते सूखे फूल पर जा अटकीं। बिना देर किये उसने झटककर उसे तोड़ लिया–जैसे उसने निश्चय कर लिया हो कि अब उसके घर में धुँधली–बेजान चीजों की कोई जगह नहीं बची। अन्य कार्यों को निपटाते हुए बनिता के हृदय में अनवरत आनन्द का झरना फूट रहा था। वह विचारों की झील में गोता लगाते हुए गुनगुनाने लगी। 'दिल है छोटा–सा, छोटी–सी आशा। मस्ती भरे मन की भोली सी आशा' कि अचानक डोरबेल बजी। झट से बनिता ने दरवाज़ा खोल दिया।

"क्या दरवाज़े से चिपकी खड़ी थी?" पति ने मज़ाकिया ताना कसा। जिसे नजरन्दाज़ करते हुए वह बोली।

"सुनो, भोपाल से जतिन का फोन आया था। सबके हालचाल तो उसने एक मिनट में पूछ लिए लेकिन आपके बारे में, बाप रे! कितनी बातें।" भाई की दृष्टि में पति की विशेष अहमियत दर्शाते हुए वह बोले जा रही थी।

"अच्छा! क्या कह रहा था, साला!" हेलमेट टेबल पर टिकाते हुए पति ने चाबी उसके हाथ में पकड़ाई।

"बाकी बातें बाद में, पहले ये देखो! हम लोगों के प्रति वह कितना संवेदनशील है। उसी ने बताया है कि हमें नये ज़माने के साथ चलना चाहिए। यानी कि अपना–अपना खाता खुलवा लेना चाहिए।"

''मेरे पास ऑलरेडी खाता है।'' पति ने आधी बात सुनकर अपना निर्णय सुना दिया।

''आप समझे नहीं। अच्छा चलो, पहले खाना खा लो फिर बात करते हैं।'' बनिता ने बालों को जूड़े में खोंसते हुए कहा।

''उसके लिए रुपए भी चाहिए होंगे?'' पति ने मसखरी नुमा सच्चाई बयाँ की जो उसे बिलकुल अच्छी नहीं लगी।

''उसकी चिंता तुम मत ही करो।''

"अरे! चिंता कैसे न करूँ? रिंकी की बालियों वाले पैसों से मैं खाता–वाता नहीं खुलवाता समझी तुम।'' अबके पति ने बात खत्म करने की मंशा से थोड़ा सख़्त तेवर से कहा।

''नहीं जी! बाद में क्यों? अच्छे कामों में देरी नहीं होनी चाहिए। बालियाँ तो कभी भी बनवा लेंगे।'' बनिता भोर होते ही 'ए बी सी बैंक' में खाता खुलवाने पति के साथ स्कूटर से निकल पड़ी। कुछ घंटों की सबल प्रक्रिया के बाद एक–एक हज़ार रुपये जमाकर दोनों के बचत खाते खुल गये। पहली बार बनिता खाता धारक बनी थी। यह किसी दौलत से कम नहीं था।

घर लौटते हुए रास्ते में मिलने वाले सभी मन्दिर, मज़ार में वह सर नवाती हुई चली आई थी। उसे लग रहा था कि उसके सारे सपने अब गुलज़ार होने वाले हैं। सारी परेशानियों को वह जीत लेगी। उसका छोटा–सा आत्मविश्वास आसमान बनकर तन चुका था। छोटे से नोकिया फोन पर बैंक का मैसेज चमका तो वह सहज ही मुस्कुरा उठी। उसके बाद तो बैंक के मैसेजों का अनवरत सिलसिला–सा चल पड़ा। बनिता भाई की उदारता की चर्चा मित्रों में करते न थक रही थी।

"वैसे तो इस सावन रिंकी की बालियाँ खरीदनी थी लेकिन कोई बात नहीं। शेयर मार्केट में एक दाँव जल्द ही लगाऊँगी। दाँव सही बैठा तो एक जोड़ी नहीं, कई जोड़ी बालियाँ रिंकी को दिलाऊँगी।" उसने अपनी इच्छा पति के सामने ज़ाहिर की। बचत खाता खुलवाने के बाद बनिता का ये पहला सावन था। नये–नये सपनों ने उसके मन को उल्लास से भर दिया था। जैसा कि उसके पिता कहा करते थे कि राखी–भाईदूज पर जतिन नेग भेजा करेगा। उन्हीं वादायी ख़यालों में खोई–खोई वह सुबह से चार बार मोबाइल उठाकर पति से पूछ चुकी थी।

"क्यों जी, जब कोई मेरे खाते में चुपके से पैसे जमा करेगा तो क्या मैसेज आ जाएगा?"

"कौन कर रहा है चुपके से पैसे जमा?"

"आप से जो पूछा है बस उतना ही बताओ।"

"हाँ मिल जाएगा..।" पति बोला।लगभग शाम के चार बजे उसने पति के पास जाकर फिर पूछा।

"तुम सही बताते क्यों नहीं? कोई मैसेज क्यों नहीं आया बैंक से?"

साइकिल की गिरारी में ग्रीस लगाते हुए उसके पति को बड़ा बेतुका–सा लगा सो इस बार वह हँस पड़ा। बेवक्त की हँसी बनिता को कचोट तो गयी लेकिन मानसिक रूप से व्यस्त होने के कारण कुछ कह न सकी। मन की उथल–पुथल में सुबह से शाम हो गयी थी किन्तु 'मनीक्रेडिट' का एक भी संदेश उसे नहीं मिला था। हारा–थका मन बच्चों की ओर मुड़ा जो अपनी ही दुनिया में मस्त थे तो बनिता को ग्लानि हुई, "अपनी उलझन में बच्चों के त्यौहार में भी शामिल न हो सकी मैं, कैसी माँ हूँ?" बुदबुदाते हुए अफसोस के साथ उसने रिंकी को गोद में बैठा लिया और चुन्नू–मुन्नू को पास खींचकर सिर पर हाथ फेरने लगी।

इसी तरह एक के बाद एक सावन, बिना 'मनीक्रेडिट' की खबर दिए निकलते चले गये। भाई ने बचत खाता खुलवाकर गंगा नहा ली थी। बनिता की जिन्दगी उसे आठों कलाएँ दिखा रही थी। इतने आग्रह से खुलवाए गये बचत खाते में शगुन के दो पैसे भी किसी ने जमा नहीं किये थे। पिता ने उसके बच्चे कैसे पढ़–लिख रहे हैं, पूछना तो दूर बनिता को चिट्ठी–पत्री तक लिखना बंद कर दिया था। भाई के द्वारा पैसों का गुणा–भाग सिखाना तो बहुत बड़ी बात बन चुकी थी। रिंकी के बाली विहीन कान देखकर बनिता शर्मा अब ख़ुद को ठगा महसूस करने लगी थी।

इस सबके बावजूद मौसम अपनी रौ में था। सर्दी विदा होने वाली थी। बसंत गुलाबी दस्तक दे रहा था। खुनक हवा के बीच बनिता को एक दिन दोपहर में पति का वह वादा याद आया, जो पिछली बार बजट असंतुलित होने के कारण उसने इस बसंत पंचमी के लिए स्थगित कर दिया था।

अवसाद के चंगुल में गिरफ्तार होने की कगार पर खड़ी बनिता उस दिन टाइम पास करने के लिए टी.वी. चैनल बदलती जा रही थी, उसकी दृष्टि सी.एन.बी.सी.आवाज चैनल पर शेयर मार्केट के पेंचीदा प्रश्नों के उत्तर देते हुए, एक सम्भ्रांत नवयुवक पर ठहर गयी। उसका नाम 'उदयन मुखर्जी' स्क्रीन के नीचे पट्टी पर लिख कर आ रहा था। अनायास उसके मुँह से निकल आया। "यही गुणा–भाग तो मैं सीखना चाहती थी, जो आप बता रहे हैं।"

बनिता टीवी का रिमोट पकड़े सोफे पर उठकर बैठ गयी। हथेली से अपना माथा छुआ जो हल्का गर्म हो चुका था। उसने पास में रखी डिब्बी से विक्स लेकर माथे पर मली और ध्यान से टी.वी. देखने लगी। रुपए से रुपए बनाने की विधि जो भाई से सीखना चाहती थी, 'अब मनीएक्सपर्ट उदयन मुखर्जी से सीखने लगी थी। बनिता प्रत्येक दिन मन लगाकर उसको सुनती–गुनती लेकिन समझ उतना नहीं पाती, जितना वह समझना चाहती थी। इसमें उसके दिमाग का कम जेब का साइज ज्यादा तंग होकर आड़े आ रहा था। उसकी मेहनत शेयर मार्केट में मिसफिट हो रही थी। बनिता को ये समझाता कौन? कभी–कभी क्रोध में टी.वी. का रिमोट टेबल पर पटक देती। रिमोट की बैटरी दूर छिटक कर

उसको मुँह चिढ़ाने लगती। भावुकता वश बनिता ये भूल रही थी कि पैसे का खेल सीखने के लिए दिमाग से ज्यादा पैसे की जरूरत पड़ती है।

गजब तो तब हो गया जब उदयन मुखर्जी से शेयर मार्केट की तकनीक सीखकर बनिता ने अपने और पति के खाते से पाँच–पाँच सौ रुपयों से पंजाब नेशनल बैंक के दस–दस शेयर खरीद लिए थे। उसके कुछ समय बाद हर महीने के अंत में ए.बी.सी. बैंक अपने नियमों के अनुसार उसके खाते से मनी 'डेबिट' करने लगा। उसका हजार रुपये का बैंक बैलेंस बढ़ने की जगह कटते हुए शून्य की ओर बढ़ रहा था। उसकी आशाओं के फुंदने निराशाओं के ताप से पिघलकर टूटते जा रहे थे। अब तक बनिता का बड़ा बेटा हॉस्टल जा चुका था। छोटा बेटा और रिंकी बड़ी हो चली थी। मायके की स्वर लहरियाँ अकाट्य सन्नाटे में बदल चुकी थीं। खर्च का बोझ बढ़ने से पति की तल्ख़ी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी।

''क्या अपने लोग ऐसे ही होते हैं? अपना वक्त निकलने पर क्या इस तरह बदल जाते हैं? फिर क्यों अपनों को अपना कहा जाता है?'' बनिता धीरे–धीरे अवसाद की नदी में गोते खाने लगी थी। जिससे उसके बच्चे भी प्रभावित हो रहे थे।

इस सबके बावजूद मौसम अपनी रौ में था। सर्दी विदा होने वाली थी। बसंत गुलाबी दस्तक दे रहा था। खुनक हवा के बीच बनिता को एक दिन दोपहर में पति का वह वादा याद आया, जो पिछली बार बजट असंतुलित होने के कारण उसने इस बसंत पंचमी के लिए स्थगित कर दिया था।

''शर्मा जी! बसंत पंचमी आ गयी। कहाँ है मेरी पीली जार्जेट की साड़ी?''

"बनिता, तुम्हें याद है,वह बात? अरे यार तुम सच में साड़ी लोगी या रिंकी की बालियाँ? सोच लो क्योंकि मेरा बजट सिर्फ एक का है!"

पति की बात का बनिता ने न बुरा माना और न ही कुछ कहा। वह अपनी बात पर अडिग बनी रही। साड़ी को लेकर दोनों में मौन वाद–विवाद ढंग से छिड़ गया। बनिता की अन्यमनस्कता को देखते हुए पति ने ही अपना इरादा बदलते हुए कहा।

"अच्छा, फिलपकार्ड पर कोई अच्छी–सी साड़ी देखकर ऑडर कर दो और मेरी शेविंगकिट भी लाकर दे दो, दाढ़ी बनाना है कल गुरुवार है दाढ़ी बड़ी हो जाएगी।"

बनिता अवाक थी, इतने जल्दी उसका प्रस्ताव कैसे मान लिया। फिर भी पति को शेविंग–किट पकड़ाते हुए उसने किस्तों पर लिया अपना स्मार्ट मोबाइल उठाया ही था कि नजर बैंक से आये एक मैसेज पर अटक गयी।

"डियर कस्टमर आपके द्वारा खाते से लेन–देन न करने के कारण 'ए बी सी बैंक' से आपका खाता अनिश्चित समय के लिए रद्द करने जा रहा है। 'प्लीजकॉन्टेक्ट अस'।"

''और मेरे पाँच सौ रुपए ?" अकबकाहट में उसके मुँह से जोर से निकल गया। वैसे तो प्रतिमाह पैसे कटने वाली बात उसने पति से छिपा रखी थी। ऐसा उसे लगता था, जबकि साथ में अकाउंट खुलने और दोनों खातों से पैसे निकलने के कारण पति भी उसी प्रकार के मैसेज रिसीव कर रहा था। ये बात वह भूल चुकी थी या उसे पता ही नहीं थी। उसकी घबराहट को नजरअंदाज़ करते हुए पति ने कहा, "तुम्हारा मंतव्य मैं नहीं जानता लेकिन तुम्हारे भाई का 'सेल टारगेट' जरूर पूरा हो गया, ये जानता हूँ। उसे अपने बैंक में बचत खाता खुलवाने का टारगेट मिला होगा इसलिए तुमसे ज्यादा सीधा बकरा उसे कहाँ मिलता। ये बात मुझे तब भी मालूम थी और आज भी।" बिना विचलित हुए बनिता का पति दाढ़ी बनाता रहा।

''आप ऐसा कह भी कैसे सकते हैं? क्या मेरा भाई सेल टारगेट पूरा करने के लिए अपनी बहन को शिकार बनाएगा?''

''मैं कुछ कहता नहीं इसका मतलब क्या किसी की फितरत जानता नहीं।'' हँसते हुए पति ने एक बात और दाग दी।

''जानते हो तो जानते रहो लेकिन मैं नहीं मानती।'' बनिता ने गुलदान से पीला फूल लेकर जूड़े में ऐसे लगा लिया, मानो उसने अपनी आत्मा को अनावृत होने से बचा लिया था।

•

पता : सेवानिवृत्त अध्यापक व स्वतंत्र लेखक
बी–24, ऐश्वर्यम अपार्ट., सेक्टर–4, द्वारिका,
नई दिल्ली–110005
मो. : 8953654363

बरसों बाद...

❑ सुनीता अग्रवाल

वह रात और रातों की तरह नहीं थी। बहुत भारी रात थी। जिसकी कोख से पैदा होने वाली सुबह उसके लिये खुशनुमा नहीं होगी। यह सच है कि एक वक्त में एक ही दुनिया मे रहते हुए सबकी दुनिया फ़र्क होती है, अपने हिस्से की रातें और अपने हिस्से की सुबहें।

रात के ठहर जाने की प्रार्थना अलग–अलग वक्त में अलग–अलग लोगों ने अलग–अलग वज़हों से की होगी। पर रमा के लिए रात के ठहर जाने की कल्पना मात्र भरम ही तो थी। अब तो उसे ज़िंदगी जीनी होगी कुणाल के बिना, एक लंबी पूरी ज़िंदगी। रमा ने महसूस किया उसके भीतर कुछ फैल रहा था, कोई सन्नाटा, एक सिहरन, बेबसी.. काश इस कायनात से सूरज का नामोनिशान मिट जाए, तारीख़ें बेमानी हो जाये और उसका कुणाल उसकी आँखों के सामने रहे हमेशा।

रमा की चेतना अंधेरे गहरे भँवर में उतरती चली जा रही थी। रमा को प्यास लगी है, सामने पानी हैं, रमा उसकी तरफ बढ़ती है, पर उसे छू नहीं पाती। उसके गले में काँटे उग आए हैं, आवाज नहीं निकलती। अचानक वह मानो होश में आती है। घूर–घूर कर आसपास रखी चीजों को पहचानने की कोशिश करती हुई लौट आती है, अपनी उसी बेरंग हो चुकी दुनिया में।

कुणाल डाइबिटीज के साथ हार्ट के पेशेंट भी थे। अटैक पड़ते ही सब कुछ इतनी जल्दी घटित हुआ कि रमा को संभलने का मौका ही नहीं मिला। देखते ही देखते कुणाल उसे अकेला छोड़कर जा चुके थे। अब उनके बिना क्या करेगी, कैसे जियेगी। रमा को लगा जैसे दर्द से भरे कुँए की तह में वो अकेली बैठी है। कौन है अब उसका। तभी उसे झटका सा

लगा..बीनू.....बीनू को तो कुछ भी नहीं पता..कि उसके पापा...। काँपते हाथों से उसने बीनू को कॉल किया। पूरी रिंग गयी। पर कॉल नहीं उठा। रमा ने दुबारा कॉल किया..सहसा उसे याद आया कितना वक्त हो चला है बीनू ने कभी उसका कॉल लिया ही नहीं, हमेशा अपने पापा से ही तो बात करती थी। रमा ने पहली बार कुणाल का मोबाइल उठाया।

''हैलो पापा, कैसे हो?

रमा सही थी।

'बीनू...'

'आप? पापा कहाँ है?'

''तेरे पापा....बात अधूरी छोड़कर वह रुक गयी थी। जैसे किसी पहाड़ की चोटी से नीचे समुद्र मे छलांग लगाने से पहले हिम्मत जुटा रही हो।

'तेरे पापा नहीं रहे।'

एक एक शब्द दहकते कोयले की तरह बीनू के अंतस को जला गया।

'बीनू, जल्दी से आ जा।'

रात भर रमा यूँ ही शिला सी पड़ी रही। अंदर एक थमा हुआ धुंध का गुबार था जो उस पल रमा को अतीत की स्मृतियों में धकेलता चला गया।

'तुम भी हद करती हो रमा, तीस साल की बेटी से कोई इस तरह बात करता है क्या?'

'तो क्या करूँ कुणाल, यह लड़की हर बात के लिए मुझे ही कसूरवार ठहराती है, एक ही लड़की है हमारी, इसका घर बसता देख लूँ बस। हम ढूंढ नहीं सकते, कोई बताता है तो वो इसका दुश्मन हो जाता है। पता नहीं किस इंद्रधनुष के पीछे भाग रही है।'

'पर बीनू इस बारे में बात तक नहीं करना चाहती।'

'और तुम भी उसे कुछ नहीं कहते।'

'कारण तुम जानती हो रमा।'

दोनों चुपचाप एक दूसरे को देखते रहे और कुणाल बिना कुछ बोले ही ऑफिस के लिए निकल गए थे। रमा जानती थी, कुणाल दिखाते नहीं पर उन्हें भी बीनू की उतनी ही फिक्र रहती थी। उम्र से ज्यादा चिंता और तनाव ने रमा को हाई ब्लडप्रेशर और जोड़ों के दर्द की गिरफ्त में ले लिया था। कभी–कभी रमा इतनी परेशान हो जाती थी कि उसे एन्टी डिप्रेशन की दवा खानी पड़ती थी।

बीनू जब तेरह साल की थी तब सीतापुर जैसे छोटे शहर से निकलकर कुणाल की नौकरी दिल्ली में लग गई थी। पांच भाई बहनों में सबसे बड़े होने के कारण कुणाल पर जिम्मेदारियों का बोझ काफी था, जिसे रमा ने बड़ी बहू होने के नाते पूरी निष्ठा और लगन से निभाया भी। कुणाल को जॉब के सिलसिले में अधिकतर शहर से बाहर रहना पड़ता था। ऐसे में कभी वृद्ध सास ससुर को डॉ. को दिखाना हो या कुणाल के दोनों भाइयों का कॉलेज में एडमिशन करवाना हो या आगे जाकर शादी ब्याह से सम्बन्धित खरीददारी अथवा आयोजन हो, रमा का एक पैर घर में और दूसरा बाहर ही रहता था। बीनू की परीक्षाएं हो या स्कूल फंक्शन, रमा खुले तौर पर उन्हें कभी भी मना नहीं कर पाई। इन सब के बीच बीनू स्वयं को उपेक्षित सा महसूस करती थी। सब देखते समझते हुए भी, कुणाल ने कभी रमा का साथ नहीं दिया। उनके लिए हमेशा घरवालों के प्रति अपना उत्तरदायित्व सर्वोपरि था, जिसमें कुणाल तो नहीं पर रमा पिसती जा रही थी। रमा को लगता था बीनू उसकी मजबूरी समझती है। जब भी कुणाल घर पर होते बीनू के साथ ही वक्त बिताते। कहीं न कहीं रमा आश्वस्त थी कि वह नहीं, पर कुणाल तो है बीनू के पास।

समय अपनी गति से भाग रहा था। बीनू ने रमा के प्रति एक अनचाही सी चुप्पी ओढ़ ली थी। धीरे–धीरे वह रमा से कटने लगी थी। वह जानकर ऐसे काम करने लगी थी कि रमा न चाहते हुए भी उस पर झुंझला उठती थी। इस बात को रमा जानने से ज्यादा समझती थी। जितनी बार वह बीनू के पास आकर अपनी बात समझाती, उतनी ही बार उसे खुद से जूझना पड़ता।

उन्हीं दिनों बीनू अपनी अपरिपक्व सोच और अल्हड़ उम्र के चलते कॉलोनी के आवारा लड़के तुषार की ओर खिचँती चली जा रही थी। उस उम्र का आकर्षण बीनू के सर चढ़कर बोल रहा था। ऐसे में यह बात समय रहते रमा के कानों तक पहुँच गयी थी।

'बीनू यह क्या सुन रही हूं।'

'मैं कुछ पूछ रही हूं, बताएगी यह क्या चल रहा है।'

'अरे आप, आज आपको फुरसत कैसे मिल गयी।'

'बीनू, क्या मैं तेरी दुश्मन हूँ, तेरे काम नहीं करती या तुझे वक्त नहीं देती।'

'देती हैं, पर उतना नहीं जितना मेरा अधिकार है, आपको महान बहू बनने का शौक है खुशी–खुशी बनिये। पर मेरी माँ आप कभी नहीं बन पाई, जब भी मुझे आपकी ज़रूरत थी तब पापा थे आप नहीं। आपकी नज़रों में मैं कभी थी ही नहीं। पापा पूछेंगे तो मैं जरूर बता दूंगी। वैसे तुषार मुझे अच्छा लगता है समझता है और सबसे बड़ी बात मुझे वक्त देता है, चाहता है और मैं भी...।'

तड़ाक...न जाने कैसे पहली बार रमा का हाथ उठ गया

था। रमा जान ही पाई कि कब उसे जिम्मेदारियों के हवन–कुंड में झोंककर कुणाल स्वयं ही बीनू की माँ भी बन गए थे।

इसके आगे रमा कुछ नहीं सुन पाई, शब्दों की गोलियों ने उसे भून दिया था। लहूलुहान थी चीख–विहीन। शायद बड़े होते बच्चों पर आपकी वह पकड़ नहीं रह जाती जितनी उनके आसपास मंडरा रहे तथाकथित शुभचिंतक मित्रों की। जिनसे जुड़ते ही उन्हें माता–पिता किसी दूसरे ग्रह के प्राणी लगने लगते हैं, पर बच्चों के प्रति हमारे लगाव को दुनिया की कोई ताकत कम नहीं कर सकती।

'रमा जो तुम्हारा फर्ज़ था तुमने किया। मैं घर आता था तब बीनू मुझे मिलती थी पर बीनू के मन में क्या चल रहा है इसका मुझे अंदाजा तक नहीं था। शायद मैं ही तुम्हारा गुनहगार हूँ। पता नहीं क्या सिद्ध करना चाहता था। कितनी आसानी से मैंने अपने हिस्से के काम भी तुम्हारे सुपुर्द कर दिए थे।' कुणाल रमा से नजरें नहीं मिला पा रहे थे।

रमा जवाब देने को हुई, तड़पी, फिर चुप हो गयी। उसने क्या खो दिया था इस बात को क्या कुणाल कभी समझ सकेंगे। उसके दिमाग में बहुत से सवाल बुलबुले की तरह उठते रहे जिनसे वह अकेली ही जूझ रही थी।

उस दिन के बाद से रमा जितना बीनू के करीब जाती उतना ही बीनू छिटककर उससे दूर होने लगी थी। बीनू को मज़ा आने लगा था। रमा दिल पर पत्थर रखकर अपने को तोलती रही। बीनू की आवेगमयी उत्तेजना अपने चरम पर घटित होने लगी थी।

बीनू के बी.टेक. करने के बाद रमा ने लड़के देखने शुरू कर दिए थे। रमा की सहेली विभा ने आगे बढ़कर अपने बेटे गौरव के लिए बीनू का हाथ मांग लिया था। इन्कार की गुंजाइश ही नहीं थी। दोनों साथ में खेलते ही बड़े हुए थे। बीनू विभा को बहुत मान देती थी। बीनू की रजामंदी के साथ ही रमा और कुणाल ने पूरे मन से तैयारियां शुरू कर दीं थीं। औपचारिकता के लिए रस्म अदायगी का दिन निश्चित हो गया था। पर बीनू के मन मे विद्रोह की चिंगारी पनप चुकी थी। रोके वाले दिन ही घर छोड़कर बैंगलोर चली गयी एक खत छोड़कर..

'पापा, मैं जा रही हूं, मेरी जॉब लग गयी है। जॉइनिंग एक महीने बाद की है। आपको सरप्राइज देने वाली थी। पर अब बिना बताये ही जा रही हूं। इस माहौल में मेरा दम घुटने लगा है। मैं जानती हूं मेरे न होने से सिर्फ आपको फर्क पड़ेगा। सॉरी पापा।'

'सिर्फ आपको'...अपनी माँ के लिए एक शब्द भी नहीं।

एक खामोशी की दीवार सरकी और रमा को अपने भार तले बहुत नीचे पाताल तक ले गयी। सतह के ऊपर किसी औरत की सिसकियाँ उभरीं। कोई नहीं लौटा सकता उसे जो उसने खोया या गंवा दिया है।

बीनू चली गयी थी। जाते–जाते अपनी छवि, अपनी आवाजें, अपना होना सब साथ ले गयी थी। वह रमा के जीवन में एक उदास सूनापन छोड़ गई थी जिसकी जिम्मेदार क्या वह स्वयं थी?

विभा को क्या मुँह दिखाएगी, क्या कहेगी, बीनू ने यह सब जानबूझ कर किया। इधर बीनू ने रमा से बात करनी बंद कर दी थी। बीनू हमेशा अपने पापा से ही बात करती। रमा की कॉल निःशब्द खाली हाथ वापस लौट आती थी। रमा बीनू की आवाज़ सुनने को तरसने लगी थी। किस अपराध की सजा मिल रही थी। बेटी थी पर उसके लिए नहीं।

परिवार के कुछ अपने मूल्य होते हैं। जब बच्चे यह मूल्य तोड़ते हैं तो सब कुछ टूट जाता है।

''कैसे संभालेगी खुद को।''

'उसे जीने दो अपने हिसाब से, कुछ अपवाद भी हुआ करते हैं। उसकी जिद, गुस्सा, बचपना, सब समय की बहती धारा में स्वतः ही विलीन हो जायेंगे, एक दिन तुम्हारी बेटी तुम्हारे पास जरूर लौटेगी।'

समय...बस इस एक शब्द को पकड़ते–पकड़ते वह टूटने लगी थी। सारे दिन–रात कैसे मनहूस से हो गए थे। उम्मीद जागती शायद फिर से सब सामान्य हो जाएगा। संवाद शब्द बाहर आने के लिए दरवाजों पर सर पटकते रहे और जानलेवा मौन ने घर के भीतर घुसपैठ शुरू कर दी थी।

एक–एक पल युगों के समान बीत रहा था। जिंदगी इस घर में अब हफ्तों, महीनों, सालों के हिसाब से नहीं, महज सांसों के हिसाब से बीत रही थी।

कुछ सालों बाद कुणाल के बहुत इसरार करने पर आई थी बीनू। पर सिर्फ चार दिनों के लिए। रमा ने उसकी पसंद की सभी चीजें बनाई थीं। बीनू को देखते ही रमा की आंखें भर आयीं थीं। लगा दौड़कर गले से लगा ले अपनी लाड़ली को। बीनू ने उचटती नजरों से रमा को देखा..पर कहा कुछ नहीं। इस बार बीनू की नजरों में खुद के लिए गुस्सा या विरक्ति नहीं, एक दर्द खालीपन–सा लगा था रमा को। जैसे एक बहुत बड़ी दीवार हो उन दोनों के बीच। रमा चाहती थी उस दीवार को लांघना, बीनू तक पहुँचना, उसे छूना पर इस बार हिम्मत नहीं जुटा पाई थी। एक बार भी पलट कर नहीं देखा... इतने सालों का वनवास यूं पल भर में कैसे....क्या यह मुमकिन है कि कोई बेटी अपनी माँ से इतने सालों तक नाराज रहे?

परिस्थितियां ऐसी थीं कि रमा को बहुत सामान्य बने रहने का मुखौटा ओढ़ना पड़ता था पर भीतर से सहज एक पल के लिए भी नहीं थी। संवाद खो चुका था। चुप्पी चुप्पी से बात करती। जो बात उन दोनों के बीच अदृश्य दीवार बनकर खड़ी हो गयी थी, वही बात चुप्पी, बहुत तीव्रता से बोल देती।

बीनू कुणाल के लिए सिल्क का कुर्ता और रमा के लिए कांजीवरम साड़ी लायी थी। जिसे रमा बीनू समझ अपने कलेजे से लगाकर रोने लगी थी। शायद रमा चाहती थी बीनू हाथ बढ़ाकर उसके आसूँ पोंछ दे। शब्दों से कुछ न भी कहे पर उसे अधिकारपूर्वक माँ कहते हुए अपनी छुवन में ऐसे ही लपेट ले, और उसे छोड़कर कभी वापस न जाये। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। रमा ने जैसे ही सारी शक्ति संचित करके पलकें खोली, बीनू कहीं नहीं थी। वह जा चुकी थी। क्यों वह अपनी ही बेटी को यह विश्वास नहीं दिला पाई कि उसकी सारी दुनिया बीनू ही है।

'क्या कमी रह गयी थी बीनू..कहाँ क्या गलत हो गया था मुझसे? तेरे मन का एक कोना जो शायद मैंने कभी भी गंभीरता से नहीं लिया, अचानक ही महासागर बनकर सब कुछ लील गया। क्यों तू मुझसे विमुख होकर दूसरी दिशा में मुड़ गयी थी..काश मैं तेरे मन की पीड़ा, मन की भीतरी सीलन तक पहुँच पाती। काश तू भी मेरे दर्द को अपना दिल बन समझ पाती।

एक सूत्र जो उन्हें जोड़े हुए था अब तक, वह आज चटक गया था। कैसे जियेगी रमा...।

बीनू अगली फ्लाइट पकड़कर आ चुकी थी। सहमी काँपते हुए कदमों से अपने पापा के निर्जीव शरीर को देखते ही उन्मादवश उन्हें कंधे से पकड़कर झकझोरने लगी,

'पापा, उठिए .. देखिए..आपकी बीनू आयी है, आप मुझे यूँ छोड़कर नहीं जा सकते, कभी नहीं।'

रमा स्तब्ध, निढाल–सी एकटक बस कुणाल को घूरे जा रही थी। बेजान थी वह। बीनू भरी आंखों से माँ को देखती रही। शब्द थे पर गुम से। दोनों एक दूसरे को नज़रों से टटोल रहे थे। कमरे में रोशनी बस इतनी भर कि चेहरे दिख रहे थे और सांसें वो तो बस ली जा रही थी, जो जिंदा होने का सबूत थीं। होने के लिए बने रहना ज़रूरी है पर बने रहना वो भी इस तरह?

सुबह से ही सभी रिश्तेदार आने शुरू हो गए थे। बीनू को देखकर सभी में कानाफूसी शुरू हो गयी थी। पंडित से मन्त्रणा एवं अंतिम संस्कार हेतु आवश्यक सामग्री का प्रबंध करने के बाद कुणाल का छोटा भाई समर रमा के सामने आ खड़ा हुआ था।

' भाभी, क्या हम तेहरवीं पाँच दिन में कर सकते हैं?'

रमा निर्विकार बैठी रही।

'आप समझ सकती हैं इतना समय...मतलब इतने दिन की छुट्टी मिलना मुमकिन नहीं...वैसे भी जो होना था हो चुका.. भइया का अपना कोई बेटा भी नहीं..इसलिए मुखाग्नि तो हमें ही देनी पड़ेगी।'

'मुखाग्नि मैं दूंगी।'

रमा की मौन दृष्टि बीनू के चेहरे पर टिक गई थी। बीनू की आंखों में कुछ ऐसा था जो रमा को अंदर तक झकझोरता चला गया।

''यह क्या बकवास है बीनू, तुम लड़की हो,तुम्हें यह अधिकार नहीं। अब आयी हो?..तुम्हें शर्म नहीं आई यूँ अपने माँ–बाप को अकेला छोड़कर जाते हुए..भाभी अब आप ही समझाइए।''

'बीनू का पूरा अधिकार है समर। मुखाग्नि बीनू ही देगी। तभी कुणाल की आत्मा को शांति मिलेगी।'

सभी सकते में आ चुके थे। कभी किसी के सामने ऊँची आवाज़ में न बोलने वाली रमा आज एकाएक बोल उठी थी। उस वक्त माँ बेटी के संबंधों से ऊपर उठा एक रिश्ता। कितना कुछ घुमड़ा और फिर सिमट गया। बीनू ने बिलखते हुए अपने पापा को मुखाग्नि दी।

आये हुए सभी रिश्तेदारों को रमा का यह निर्णय उनके तथाकथित आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाने के लिए काफी था। शाम होते–होते सभी की हिकारत भरी नज़रों ने मानों उन्हें कठघरे में लाकर खड़ा कर दिया था।

'भाभी, हमें लगता है, अब यहाँ हमारी ज़रूरत नहीं। बीनू सक्षम है यह सारी ज़िम्मेदारी आराम से निभा लेगी। हम जा रहे हैं, जब भी हमारी ज़रूरत लगे तो याद कीजियेगा।'

कहाँ गया वह स्नेह, प्यार और सम्मान। जिसके वशीभूत होकर रमा ने अपना पूरा जीवन दाँव पर लगा दिया था। सभी कुछ ठहर चुका था, उसकी अपनी जिंदगी की तरह। रमा ने जोर से सांस ली जैसे इस रुकी हुई जिंदगी में जान डालने की कोशिश कर रही हो। सारी उम्र जिस भरोसे, अपनेपन की बात किया करती थी आज उसी हवा में सांस लेने को छटपटाने लगी थी रमा। सब डांवाडोल हो चुका था।

कितना कठिन होता है जब रेत की तरह सब कुछ आपके हाथों से फिसलता चला जाता है। उन क्षणों में कितना

कुछ ध्यान से गुजर गया। महसूस हुई तो सिर्फ एक टीस, दर्द की एक तीखी लहर। खाली हो चुके कमरे के बीचोंबीच बाढ़ में सब कुछ जलमग्न हो जाने के बाद, खड़ी एकाकी पेड़ जैसी रमा नितांत अकेली, धराशायी सी।

बीनू रमा को थामे खड़ी रही यूँही देर तक। फिर धीरे से अपने हाथों की पकड़ ढीली करते हुए निगाहें नीची कर सधी आवाज में बोली, ''बैठिए माँ, पापा की यादें काफी हैं हमारे लिए। बहुत जी लिया तुमने उन सबके लिए जो आज हमारे लिए रुके तक नहीं। कम से कम आज यह तसल्ली तो है कि तुमने अथक समर्पण के साथ इन्हें अपने बच्चों की तरह समझा और जिम्मेदारियां भी निभाईं। अब बस..आप सिर्फ मेरी माँ हो..मुझे ही देखो।'' रमा के घुटनों पर सर टिकाते हुए बीनू ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा।

बिल्कुल बच्चों जैसी मासूमियत, भोली आंखों की नमी उतर आई थी बीनू के इन शब्दों में। इतने सालों बाद ''माँ'' सुनकर कहीं गहरे सुख की अनुभूति हुई थी रमा को। पर बुरी तरह टूट चुकी रमा बीनू का चेहरा हथेलियों में धँसाएँ हिचकियों से झटके खाती बिलख उठी थी,

'क्या कमी रह गयी थी बीनू..कहाँ क्या गलत हो गया था मुझसे? तेरे मन का एक कोना जो शायद मैंने कभी भी गंभीरता से नहीं लिया, अचानक ही महासागर बनकर सब कुछ लील गया। क्यों तू मुझसे विमुख होकर दूसरी दिशा में मुड़ गयी थी..काश मैं तेरे मन की पीड़ा, मन की भीतरी सीलन तक पहुँच पाती। काश तू भी मेरे दर्द को अपना दिल बन समझ पाती। तू अभी भी नाराज़ है मुझसे..एक माँ कभी भी अपने बच्चों का बुरा नहीं सोच सकती। जानती है न तू?'

'हाँ माँ, पर शायद आपकी ज़िंदगी देखने की मेरी अपनी सोच और उस सोच से उपजी निराशा और खीज नकारात्मकता बनकर मुझ पर हावी होने लगी थी। जिन्हें मैं स्वयं ही अब चिन्हित नहीं कर पाऊंगी। मैं तुमसे अपने लिए बाकियों से अलग प्यार, दुलार और परवाह की अपेक्षा रखती थी। तुम्हारी थोड़ी सी भी इग्नोरेंस मुझे भीतरी और बाहरी दोनों स्तरों पर तोड़ देती थी। तुम्हें तकलीफ पहुँचाकर मेरे अहम को गहरी सांत्वना मिलती थी। मैं कितनी बातें तुमको कहना चाहती थीं, अपना सुख–दुःख, जो सिर्फ एक बेटी अपनी माँ से सांझा कर सकती है। पर तुम उस पल मेरे पास नहीं होती थी और मैं पागल, अतीत की उन्हीं टूटी–फूटी बैसाखियों के सहारे चलती हुई तुम सबसे कब इतनी दूर निकल गयी.. समझ ही नहीं पाई ।'

''पूरे चौदह साल का वनवास बीनू। तेरे घर लौटने की बहुत बड़ी कीमत चुकाई है हमने।''

''जानती हूं माँ'' नज़रें झुक गयी थी बीनू की।

'तू थक गई होगी, चाय बनाऊं, पीयेगी?'

'आप बैठो, मैं बना कर लाती हूँ। साथ में कुछ ले आऊं ?'

'मन नहीं हो रहा..'

'तबीयत वैसे ही ठीक नहीं रहती तुम्हारी, नहीं खाओगी तो कमजोरी आ जायेगी। थोड़ा सा कुछ खा लो मेरी ख़ातिर।'

रमा चुपचाप उठी और खाने की मेज पर आकर बैठ गई। आंखें बीनू पर ही टिकी थीं। छत्तीस साल की बीनू की पीली पड़ती रंगत के ऊपर झांकती कुछेक बालों की सफेदी और बड़ी–बड़ी आँखों के आसपास उभर आये हल्के काले घेरे कैसे मुखर हो उठे थे। रमा बीनू के जीवन में आगे आने वाले उस भुतही अकेलेपन के खतरे का अलार्म सुन रही थी। चाह रही थी कि बीनू उस खतरे से सचेत होकर अपने लिए कोई योग्य जीवन साथी ढूँढ़ ले।

'बीनू, एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानेगी।'

'बोलिये।'

'अब तू शादी कर ले..मेरी भी जिंदगी का क्या भरोसा।'

'माँ' बीनू ने घुड़का, पर नकली गुस्से से।

'कोई नजर में है?'

'नहीं तो।'

'देख जो भी तुझे पसंद हो उसी से कर ले.. वैसे भी बहुत देर हो चुकी है।'

'अभी तो कोई नहीं है, काम में इतनी व्यस्त रहती हूं। समय ही नहीं मिलता। वैसे भी इस उम्र में अब वो आकर्षण कहाँ रह गया है कि कोई लड़का ....।' बचे हुए शब्द हवा में तिनकों की भाँति उड़ते हुए खो गए थे।

रमा पस्त, थके हुए कदमों का सहारा लेकर उठने लगी तब पीछे से बीनू ने रमा के कंधे को छुआ,

' माँ, मेरे साथ चलोगी?'

रमा ने पलटकर देखा, बीनू का आँसुओं से भरा चेहरा उसे पिघलाता चला गया।

रमा ने दोनों बाहें फैलाकर बीनू को सीने से भींच लिया था।

ख़ामोशी की दीवार सरक चुकी थी।

•

पता : 493, सेठ राम जस लेन,
नरही, लखनऊ–226001
मो. : 9236208346

भीगी आँखें, खाली मन

❑ मीनाधर पाठक

उम्र की तरह ही रात भी आधी से ज्यादा बीत चुकी है पर आँखों में लम्हा भर नींद आज भी नहीं है। जबसे बड़े को ट्रेनिंग के लिए विदा की है। तब से उसे हर पल बेटे की चिंता लगी है। हालांकि वर्षों बाद मन के अँधेरे कोने में उजाले की एक किरण फूटी है। एक उच्छ्वास के साथ करवट बदलते ही उसका बेलगाम मन अतीत के अरण्य में भटकने लगा है।

समय से बड़ा कोई दूसरा मरहम नहीं होता। तुषार के जाने के बाद वह किस कदर अकेली पड़ गयी थी!

दिन तो किसी तरह बीत जाता पर जैसे ही रात के नौ बजते, लगता कि तुषार आ रहे होंगे। कई बार तो वह गेट खोल कर खड़ी भी हो जाती, फिर भीगी आँखें और खाली मन लिए वापस लौट आती।

"मम्मा...! पापा कहाँ चले गए? पापा कब तक आयेगें?" बिस्तर पर लेटते ही हर रात बच्चे यही प्रश्न दोहराते रहते। वह उन्हें छाती से लगा कर चुपचाप अँधेरे में आँसू बहाती रहती।

वह जानती थी कि तुषार के बिना जीवन की डगर बहुत कठिन है। अकेले वह कैसे चल सकेगी! कंपनी में काम करते हुए बहुत–सी आवश्यकताओं को दरकिनार कर तुषार ने एक छोटा–सा घर बनवा लिया था। उसने वहाँ जाने का निर्णय कर लिया। उन लोगों के बीच अब एक पल भी नहीं रहना चाहती थी, जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए उसका जीवन ही उजाड़ दिया था।

अपने घर में आने के बाद उसके सामने ढेरों समस्याएँ मुँह बाए खड़ी थीं। उसके ज्वाइंट अकाउंट में जो रकम पड़ी थी, वह भी खत्म हो रही रही थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि करे तो क्या करे! बहुत सोच विचार कर उसने पढ़ाने का निर्णय लिया। कुछ प्रयास के बाद एक छोटे से स्कूल में जॉब मिल गयी। फिर धीरे–धीरे स्कूल और आस–पास के बच्चे पढ़ने के लिए घर भी आने लगे थे।

दिन–रात गुजरते रहे। घर आ कर पढ़ने वाले बच्चों की संख्या में वृद्धि होती रही। और देखते ही देखते वर्षों बीत गए। पर लगता है जैसे कल की ही बात हो जब तुषार मझधार में छोड़ कर चल दिए...!

रुलाई फूट पड़ी थी। उसने जल्दी से अपना मुँह दबा लिया। कहीं छोटा बेटा जाग न जाय! आँखें चुपचाप बरसती रहीं। इस गाढ़े अंधकार में भी उसे अतीत के वे काले पन्ने साफ–साफ नज़र आ रहे थे, जब कुछ प्राइवेट सेविंग कंपनियाँ अपना पैर पसार रही थीं। जल्दी दोगुना होने के लालच में लोग अपनी रकम भी खूब जमा कर रहे थे। उस समय ऐसी ही एक कंपनी में द्वारिका प्रसाद, यानी कि तुषार के पिता बड़े अधिकारी थे और लक्ष्मी हाथ गोड़ धो कर घर में बैठी थीं। अपना कालोनी का घर छोड़ कर वे बड़े से किराए के बंगले में आ गए थे। उन्होंने घर के भीतर से ले कर बाहर तक सारी सुविधाएँ जोड़ ली थीं।

तुषार अभी पढ़ ही रहे थे कि ब्याह हो गया था। जैसा कि घर के लोग कहते थे, तुषार का मन पढ़ाई में कम ही लगता था। विवाह के बाद तो वे बिलकुल ही लापरवाह हो गए थे। पिता आए दिन शहर से बाहर होते और वह मित्रों संग कॉलेज की जगह सिनेमाहाल में। देखते ही देखते सात–आठ वर्ष बीत गये। इस बीच तुषार दो बच्चों के पिता बन गए थे, पर उनके माथे पर शिकन न थी।

बीते वर्षों में कई और सेविंग कंपनियाँ आ जाने से द्वारका प्रसाद की कंपनी, जो शीर्ष पर थी, वह धरातल की ओर लौटने लगी। कुछ समय बाद जब कर्मचारियों के इंसेंटिव भी रुकने लगे तब उन्होंने हड़ताल कर दी।

कुछ समय की हड़ताल के बाद कंपनी ने कड़ा रुख अपनाया तो कुछ लोग जो अपनी सरकारी नौकरी को महीने में हफ्ता–दस दिन हाज़िरी की ऑक्सीजन से जिंदा रखे थे, वे अपनी नौकरी पर डट गए। पर द्वारका प्रसाद की पत्नी के नाम से आने वाले इंसेंटिव और कमीशन की आनंदबाई ने जैसे उनका विवेक ही हर लिया था और वे लिखित में नौकरी को इस्तीफा दे आए थे। सो ठन–ठन गोपाल हो कर घर बैठ गए। धन की आमद के साथ दिखावे की प्रवृत्ति आ ही जाती है। सो सबके मन के साथ खर्चे भी बढ़े थे। अब उन बढ़े खर्चों को समेटना उनके लिए कठिन हो रहा था।

जैसे–जैसे दिन बीत रहे थे, बंगले का किराया और ड्राइवर की सैलरी भारी पड़ रही थी। अब वे लौट कर कॉलोनी में जाते तो लोग क्या कहते? यही सोच कर शहर के बाहर पड़ा प्लाट आधा बनवा कर रहने लगे। देखते ही देखते गाड़ी भी बिक गयी और बचाखुचा धन बेटी के विवाह में चुक गया।

अब तो उन्हें अपने बेटे का परिवार भी भारी लगने लगा था। जब आमदनी का स्रोत ही सूख गया हो तो भारी लगना स्वाभाविक भी था। परिवारदार बेरोजगार बेटा किस पिता को भाता है भला! उनका व्यवहार अपने दूसरे बेटों की अपेक्षा तुषार के प्रति रूखा होता चला गया। अब बात–बात पर तुषार के निठल्लेपन की तानाकशी के छींटे उस पर भी पड़ने लगे थे। जिससे तुषार को हो न हो, उसके भीतर हीन भावना घर करने लगी थी। जब वह अपनी थाली परोस कर बैठती तब निवाला गले के नीचे न उतरता। लगता कि इन रोटियों में तुषार का श्रम शामिल नहीं है। फिर अगले ही पल ये सोच कर अपने को तसल्ली दे लेती कि जो दिन–रात वह सबके पीछे चकरघिन्नी–सी नाचती रहती है, क्या वह श्रम नहीं है?

नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि द्वारिका प्रसाद ने तुषार से साफ–साफ कह दिया, "भोजन के सिवा अपना बाकी का खर्च तुम स्वयं देखो।" अब तुषार के माथे पर बल पड़ा। मन लगाकर पढ़ाई तो की नहीं थी, हाँ, मैथ और साइंस अच्छी थी तो एक मित्र के जरिए कुछ ट्यूशन मिल गए और शुरू हुई साइकिल से दौड़। कार की स्टीयरिंग थामने वाली हथेलियाँ अब सायकिल की हैंडिल पर कस गयी थीं।

पिता ने जैसे ही गोद से उतारा, तुषार लड़खड़ते हुए ही सही, धीरे–धीरे खड़े हो रहे थे। बच्चों के लिए आवश्यकता भर कमाने भी लगे थे कि एक रात तुषार के लौटते ही घर खर्च के नाम पर पिता–पुत्र में ठन गयी।

"कुछ और ट्यूशन मिलते ही घर खर्च देने लगूँगा पर अभी संभव नहीं।"

"तो कल से तुम्हारी रसोई अलग। यहाँ मैंने धर्मशाला नहीं खोल रखी है।" पिता की बात सुनते ही तुषार क्रोध से भरे हुए उसे रसोई से खींच कर कमरे में ले आए और दरवाज़ा बंद कर लिया। बच्चे सहम कर उससे चिपक गए। उसने थपकी दे कर उन्हें सुला दिया पर उसकी आँखों की नींद उड़ चुकी थी। उसके भीतर दुःख, क्रोध, अपमान सब एक साथ घुमड़ उठे थे।

जागती आँखों की रातें अक्सर लंबी हो जाती हैं। फिर भी सुबह तो होती ही है। उस दिन भी आँगन उजास से भर उठा था। पर उसके मन में अंधकार ही अंधकार था। उठ कर धीरे से कमरे का दरवाजा खोला, सासू माँ को रसोई में गुनगुनाते देख कर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। लग रहा था जैसे वह कोई बुरा स्वप्न देख रही हो। वह टुकुर–टुकुर ताकती रही। 'बेटे से नाराजगी थी भी तो मैंने या मेरे बच्चों ने क्या बिगाड़ा था? हाथों की मेंहदी भी तो नहीं छूटी थी कि सहायिका की छुट्टी कर रसोई का द्वार दिखा दिया था सासू

माँ ने। तब से आज तक वह जी–जान से सबकी सेवा टहल में लगी रही। और आज सासू माँ ने भी पलट कर नहीं देखा था। मुझे न सही, मेरे बच्चों को तो पुचकार लेतीं।' सोच–सोच कर उसका दिल टूक टूक हो रहा था।

तभी तुषार ने उसके कंधे पर हाथ रखा। उसने गुस्से से उनका हाथ झटक दिया। उसे सिसकता छोड़ तुषार चुपचाप साइकिल लेकर निकल गए। जब लौटे तब रसोई के लिए कुछ जरूरी सामान और थोड़ा बहुत राशन लेकर। वह कमरे के एक कोने को रसोई के लिए तैयार करने में जुट गयी। उस दिन से साल–दर–साल तुषार की साइकिल का पहिया यूँ ही घूमता रहा।

जिंदगी ने करवट बदली और एक रात तुषार खिले–खिले–से घर लौटे। उन्हें देख कर उसके मन की बगिया भी खिल उठी।

"आज तो चेहरे पर चाँद खिला है? क्या बात है! मैं भी तो जानूँ।" खाने पर तुषार को छेड़ते हुए वह बोली।

"एक नई सेविंग कंपनी आयी है इला, उसी को ज्वाइन करने की सोच रहा हूँ।" तुषार बाँसुरी–से बज उठे थे।

"कौन सी कंपनी!" तुषार ने उसके चेहरे का उड़ा हुआ रंग देख कर उसे सारी बातें समझाईं।

"नहीं तुषार! मैं आपको ये नहीं करने दूँगी। हम गुजारा कर लेंगे। ये कंपनियाँ छलना होती हैं तुषार! जो है, वह भी अपने साथ बटोर कर ले जाती हैं। अपने पिता को देख कर भी नहीं सीखे आप!" वह तुषार को समझाती रही, पर तुषार कहाँ मानने वाले थे।

"पागल हो तुम!" कह कर उसकी बात खारिज कर दी और कुछ ही दिनों में उन्होंने कंपनी ज्वाइन भी कर ली। उनके अच्छे बात–व्यवहार से धीरे–धीरे एक अच्छी–खासी टीम खड़ी हो गयी। जिसमें ज्यादातर इटावा, जालौन, भिंड, मुरैना वाले उनके मित्र जुड़ गए थे और उन्होंने अपने मित्र, रिश्तेदारों को जोड़ लिया था। धीरे–धीरे काम चल निकला। कंपनी तुषार के कलेक्शन को देखते हुए उन्हें एक बड़ा पद देने की तैयारी में जुटी थी। जब तुषार ने ये खबर उसे दी, तब उसकी आँखों में ढेर सारे रंगीन सपने तैर गए थे।

समय के साथ तुषार के पिता की पेंशन बन जाने से उनकी स्थिति भी सुधरी थी परंतु तुषार की बढ़ती आय को देख कर वे हतप्रभ थे और उनसे जुड़ने के प्रयास में लगे थे। तुषार के देर रात आने पर उसके पहुँचने से पहले ही गेट खोल देते।

"तुषार! अपने स्वास्थ्य का भी ख्याल रखा करो। इतना काम करोगे तो सेहत पर असर पड़ेगा बेटा!" वे तुषार को दुलार से डपटते।

वह देख रही थी कि पिता के स्नेह की गगरी तुषार पर छलक रही थी। तुषार भी उस स्नेह से सिक्त होते जा रहे थे। होते भी क्यूँ न! बरसों से पिता की उपेक्षा के शिकार उनके स्नेह को तरसे थे। माँ तो पति की ऐसी अनुगामिनी थीं कि वे जो भी कहते, वही उनके लिए ब्रह्म वाक्य था। क्या मजाल कि पतिधर्म के आगे तुषार के लिए उनकी ममता बूँद भर भी छलक जाय! परन्तु जैसे ही पति का स्नेह छलका, माँ का आँचल भी भीगने लगा। अब तो सुबह की चाय पर तुषार बुला लिए जाते और पिता–पुत्र एक साथ बैठ कर चाय पीते। जब–तब माँ के हाथों का तगड़ा जलपान तुषार को दोपहर के खाने से दूर कर देता। अब रात के खाने पर ही वे दोनों साथ होते और उसके बाद या तो तुषार कंपनी की फाइलों में सिर गड़ा लेते या थके होने के कारण सो जाते। अब तो पिता आते–जाते तुषार–तुषार–तुषार की माला–सी जप रहे थे।

खून के रिश्तों में एक चुम्बकीय आकर्षण होता है। उनमें कितनी भी दूरियाँ क्यूँ न आ जायँ, परंतु यदि एक भी समीप आना चाहे, तो दूसरा स्वतः ही खिंचा चला आता है।

"तुषार...! ये आपका सगापा मुझे न जाने क्यूँ बहुत खटक रहा है।" रहा न गया तो एक रात वह खिसिया पड़ी थी।

"मना तो करता हूँ इला! पर वे नहीं मानते तो क्या करूँ? तुम्हीं बताओ।" तुषार ने मनुहार करते हुए उसे बाँहों में भर लिया था।

"अच्छा–अच्छा अब रहने भी दो। चलो खाना ठण्डा हो रहा है।"

"जानती हो इला! पापा मेरी कंपनी में आना चाहते हैं।"

"क्यों?" उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा।

"क्यों का क्या मतलब? खाली बैठे हैं। कुछ करना चाहते हैं। वैसे एमडी मुझसे खुश है। अबकी हेड ऑफिस गया तो उनके बारे में बात करूँगा।"

सुन कर उसके दिल में फाँस–सी चुभ गयी। निवाला गले में ही फँस गया। किसी तरह पानी के सहारे उसे पेट में उतारा। बीते वर्षों में वह सबकी फितरत पहचान गयी थी। नहीं चाहती थी कि तुषार अपनी कंपनी में पिता की सिफारिश करें। दबे शब्दों में विरोध जताया, तो तुषार उखड़ गए।

"तुम अपने काम से काम रखो, मुझे मालूम है कि क्या करना है।" तुषार का जवाब सुन कर लगा कि अभी रो पड़ेगी। डाबडबाई आँखें लिए चुपचाप थाली उठा कर चली गयी।

उस दिन वह हेड ऑफिस के लिए तुषार को जाते हुए देखती रही। उसका मन न जाने क्यूँ उथल–पुथल हो रहा था। "तुषार क्यूँ नहीं समझते कि आँखों से टपका आँसू कभी आँखों में नहीं लौटता। उनसे इतना ही प्रेम था तो उनकी यूँ लानत–मलानत न हुयी होती। माना कि समय कठिन था, पर क्या हमारे बच्चों के मुँह से रोटी छीनना ही एक रास्ता था!"

दिन भर उसका मन अनमना–सा रहा। रात लगभग दस बजे गेट खटका। वह कमरे का दरवाज़ा खोल कर बाहर निकलने को हुयी कि गेट खुल चुका था और तुषार अपने पिता के साथ उनके कमरे की ओर बढ़ गए थे। उसने धीरे से दरवाजा बंद कर लिया। उधर झरने–सी फूटती आवाजें उसके कानों में सुइयाँ चुभो रही थीं। वह चुपचाप बच्चों के पास लेट गयी। आँखों से आँसू बह चले थे। रसोई में बर्तनों के खटकने की आवाजें बता रही थीं कि बेटे के लिए थाली परोसी जा रही थी। थोड़ी देर बाद तुषार कमरे में आये।

"इला! सो गयी क्या?" बोलते हुए तुषार ने स्विच ऑन कर दिया।

"हाँ, झपकी लग गयी थी। आप चेंज करो तब तक मैं खाना लगाती हूँ?" कहती हुयी नींद में होने का स्वांग रचती वह उठ बैठी थी।

"तुम परेशान मत हो। बहुत थका हूँ, सोऊँगा।" कह कर तुषार ने कपड़े बदले और स्विच ऑफ कर लेट गए।

"ये क्यों नहीं कहते कि माँ के हाथ का बना खा आये हो। इस लिए पेट भरा है।" सोच कर जी जल उठा था।

"क्या हुआ वहाँ? मुझे बताने की कोई जरूरत नहीं है क्या?" जब तुषार ने कुछ बोले बिना ही करवट बदल ली तो उससे रहा न गया।

"कंपनी ने पापा का पिछला रिकार्ड देख कर मेरी सिफारिश स्वीकार कर ली है। सारे कागज तैयार हैं। बस कुछ सिग्नेचर होने हैं उसके लिए पापा को जाना पड़ेगा।" सुन कर उसके कानों में विस्फोट–सा हुआ।

"और आप ? मेरा मतलब आप का प्रमोशन कर रही थी कंपनी। उसका क्या हुआ?"

"रीजनल मैनेजर कोई एक ही बन सकता था इला!"

"तो आपने उनकी वाली कर ही दी! अब हमारे व हमारे बच्चों के भविष्य का क्या!" क्रोध और छटपटाहट में उसकी आवाज काँप गयी थी।

"तुम्हें कोई परेशानी है?" तुषार भड़क गए थे। वह अपना मुँह दबाए सिसक पड़ी। मन किया कि अभी बच्चों को जगा कर उनके साथ घर से निकल जाए। तुषार भी आज उन्हीं लोगों की भाषा बोल रहे थे, जिन लोगों ने कभी उन्हें दूध की मक्खी–सा निकाल फैंका था। उसकी नींद एक बार फिर उड़ चुकी थी। न जाने क्यूँ उसे लग रहा था कि ये ठीक नहीं हुआ। तुषार बच्चों के हिस्से की खुशियाँ पिता को समर्पित कर आये थे। और वह दूर खड़ी देखने के सिवा कुछ नहीं कर पा रही थी। उसे बचपन में पढ़ी लोमड़ी और कौव्वे की कहानी याद आ रही थी।

देखते ही देखते घर के अगले भाग में कंपनी का रीजनल ऑफिस बन कर तैयार हो गया और एक मोटी रकम भी किराए के रूप में मिलने लगी। ऑफिस खुलने लगा और अफसर की कुर्सी पर बैठते ही धीरे–धीरे पिता में अफसरी ठसक वापस लौटने लगी।

'किस्मत से ज्यादा कभी किसी को कुछ मिला है, जो मुझे मिलेगा!' यही सोच कर संतोष कर लिया था उसने और जिंदगी एक बार फिर चल पड़ी थी, पर न जाने क्यों इधर कुछ दिनों से तुषार हर समय परेशान–से दिख रहे थे। बात–बात पर झुंझला रहे थे। वह कुछ बोलती तो गुस्से से चीख पड़ते। उसे लगा कि अब पिता से अटेंशन मिलनी कम हो गयी है और माँ का आँचल भी सूखता जा रहा है, इस लिए खिसिआए हैं। उसे तो पहले से पता था, पर तुषार की आँखों पर पट्टी बँध गयी थी। उसने लाख समझाया, पर वे उसकी सुनते ही कब थे! वह कमरे में बैठी सोच ही रही थी कि ऑफिस से आती तेज आवाजों नें उसे चौंका दिया। वह झट से बाहर निकल आयी। ऑफिस के भीतरी द्वार पर उसकी सासू माँ और दोनों देवर खड़े थे। वह भी जा कर उनके पीछे खड़ी हो गयी। भीतर पिता–पुत्र में वाक्य–युद्ध छिड़ा था। किसी अनिष्ट की आशंका से उसका दिल धड़क उठा। तभी तुषार धड़धड़ाते हुए कमरे में गए और कुछ फाइलें ला कर पिता के सामने मेज पर पटक दी। फिर वापस कमरे में आ कर फूट–फूट कर रो पड़े। वह भाग कर पानी ले आयी पर तुषार ने उसकी ओर देखा तक नहीं। उसका दिल बैठा जा रहा था। जरूर कोई बड़ी बात हुयी है नहीं तो तुषार यूँ बच्चों की तरह न बिलखते। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। वह उनकी पीठ सहलाती रही। रो लेने के बाद तुषार कुछ शांत हुए तो उसने पानी का गिलास उनकी ओर बढ़ा दिया।

"पानी पीजिये तुषार! आखिर क्या हो गया जो आप इस तरह...!" उसकी भी आँखें छलक पड़ी थीं।

"कुछ नहीं बचा इला! सब चला गया।" दो घूँट पानी पी कर गिलास उसे थमाते हुए बोले तुषार और बेड पर निढाल हो गए।

"क्या नहीं बचा तुषार?" लगभग चीख–सी पड़ी वह।

"मेरी पूरी टीम हाथ से निकल गयी। मैं फिर से रास्ते पर आ गया इला!"

उसके हाथ से गिलास छूट कर झन्न से गिर पड़ा। कमरे में पानी फैल गया। आँखों के आगे अंधेरा छा गया। वह दीवार का सहारा ले कर वहीं बेड पर बैठ गयी।

"मैंने तो पहले ही कहा था तुषार!" उसकी आवाज रुंध गयी थी।

"मुझे क्या पता था इला, कि पापा मेरे साथ छल करेंगे!" तुषार लुटे–पिटे से पड़े थे।

वही 'ढाक के तीन पात !' तुषार जहाँ से चले थे वहीं फिर से आ खड़े हुए थे। अब पिता–पुत्र में आये दिन टीम को ले कर बहस आरम्भ हो जाती। समय के साथ बहस इतनी बढ़ी कि कंपनी के हेड ऑफिस तक पहुँच गयी। फिर एक दिन सभी लोग कंपनी में तलब किए गए। वाद–विवाद हुआ। कंपनी भी जानती थी कि टीम तुषार ने खड़ी की थी। अपने अधिकारों का प्रयोग कर पिता ने पूरी टीम हथिया ली थी और पदोन्नत्ति और ज्यादा कमीशन की लालच में टीम भी उन्हीं से जा मिली थी। गुस्से और निराशा में तुषार ने कंपनी छोड़ने को कह दिया। पर तुषार के पिछले रिकार्ड को देखते हुए कंपनी के अफसरों ने उन्हें समझा–बुझा कर अपना अकाउंटेंट रख लिया। आखिर कंपनी को तो हर हाल में अपना ही मुनाफा देखना था।

जनवरी माह की सर्द रात थी। सभी के दरवाजे बंद थे। घर से हमेशा की तरह आज भी कोई नहीं निकला था। तुषार देर तक उन लोगों से बातें करते रहे। वह खड़ी देवता पीतर मना रही थी। आराम से बातें होते देख उसके मन में आस बँधी। उसे लगा कि अभी सब लोग चले जायेंगे और तुषार लौट आयेंगें कि तभी अचानक न जाने क्या हुआ कि उन लोगों ने तुषार को वैन में धकेल दिया।

गृहस्थी की जो गाड़ी चल पड़ी थी, फिर से हिचकोले खाने लगी। तुषार को ठीक–ठाक कमीशन मिलने लगा था। एकाएक सब बंद हो गया। हाँ, कंपनी एक सैलरी देने लगी। तुषार दिन भर ट्यूशन करते और रात भर बैठ कर हिसाब–किताब देखते। वह रात में उठ कर चाय बनाकर तुषार को थमा देती, पर काम की अधिकता के कारण उन्हें उसकी सुध तक न रहती।

आमदनी का स्रोत बढ़ा, तो फिर से एक बार हाथ बढ़ा कर आकाश छूने लगे थे द्वारिका प्रसाद। और तुषार! कपड़ों के नाम पर वही उसके हाथ का बुना स्वेटर, मफलर और दस्ताने। अपनी हीरो सायकिल की हवा या पंचर सुधरवाना ही उनके व्यक्तिगत खर्च में शुमार था। भाग्य में सुख न हो, तो कहाँ से मिले! उनकी सारी मेहनत पर पानी फिर गया था। अपमानित महसूस कर रहे थे खुद को। उनके जूनियर आगे बढ़ गए थे और वे मात्र कंपनी के नौकर बन कर रह गए थे। और इन सब के जिम्मेदार उनके पिता थे। इस बात ने उन्हें बहुत आहत किया था। अब पिता–पुत्र में ऑफिस के हिसाब–किताब के सिवा कोई बातचीत नहीं थी।

धीरे–धीरे दो वर्ष बीत गए। नई गाड़ी आ गयी। छोटे भाई का ब्याह तय हो गया। घर में रंग–रोगन होने लगा। गहने–कपड़े खरीदे जाने लगे कि इसी बीच कुछ सेविंग कंपनियों की भागने की सुगबुगाहट सुनाई देने लगी जो समय के साथ लगभग रोज ही अखबारों में खबर बन कर छपने लगी थी। लोग आत्महत्या कर रहे थे। आए दिन यह खबरें सुन–सुन कर उसका दिल डर रहा था।

इधर पिछले कुछ महीनों से कंपनी ने सैलरी नहीं दी थी। बच्चों की फीस के साथ और भी कई देनदारियाँ हो गयी थीं। कंपनी हर बार अगले महीने पर टाल रही थी। अब लग रहा था कि इस महीने सैलरी हाथ आ जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा, पर जिंदगी ने एक और झटका देने की तैयारी कर रखी थी।

न जाने कैसे तुषार को कंपनी के भागने की खबर मिली। सुन कर वे हेडऑफिस के लिए भागे। खबर पक्की थी। तुषार ठगे–से लौटे। चेहरा देख कर ही वह समझ गयी थी फिर भी पूछ ली, "क्या हुआ?"

"वही, जिसका डर था।"

"मतलब कि कंपनी भा...!" उसका मुँह खुला का खुला रह गया।

"हाँ इला, कंपनी भाग गयी।" कह कर तुषार दोनों हाथों से अपना सिर थाम कर बैठ गए।

"तभी पापा जी दो दिन से नहीं दिख रहे हैं !"

चौंक कर उसकी तरफ देखा तुषार ने। अब उन्हें भी ध्यान आया कि दो दिन से ऑफिस नहीं खुला था। और एक झटके से उठ कर माँ को आवाज देते हुए उनके कमरे में पहुँच गए। पीछे वह भी थी।

"पापा कहाँ गए?" बेटे को अचानक अपने सामने खड़ा पा एकाएक वे कुछ बोल न सकीं।

"बोलती क्यूँ नहीं आप? कहाँ गए पापा? उन्हें मालूम था कि कंपनी भाग गयी और उन्होंने मुझे कानोंकान खबर भी नहीं होने दी!"

"तो मुझ पर क्यों चीख रहे हो? अपने पिता से पूछो जा कर।" तुषार को उपेक्षित छोड़ वे रसोई की ओर बढ़ गयीं।

तुषार अपने होश खो बैठे थे। माँ के पीछे रसोई में आ गए, "सच बताना माँ! मुझे जन्म दिया है तुमने या कहीं कूड़े के ढेर से उठा लायी हो?" कहते–कहते बेबसी से उनकी आँखें छलक पड़ीं। उसका कलेजा चाक हो गया। माँ के मुँह से भी बोल न फूटे। बेटे का चेहरा देखती रह गयीं। वह तुषार का हाथ पकड़ कर कमरे में ले आयी।

"इला, मैं कहीं का न रहा! जी करता है कुछ खा कर सो रहूँ।" उसके कंधे पर सिर रख फफक पड़े तुषार।

"ऐसा ख़याल भी मन में मत लाइएगा तुषार! कंपनी के आने से पहले भी तो हम जी रहे थे न!" कहते हुए उसके पेट में भी गोले उठ रहे थे पर वह रो कर तुषार को और कमजोर नहीं करना चाहती थी। वह तुषार की पीठ सहलाती रही और वे हिलक–हिलक कर रोते रहे।

उस समय डकैतों का आतंक था। अपहरण, हत्या और फिरौती की घटनाएँ आये दिन घटित हो रही थीं। इटावा, भिंड, मुरैना का नाम सुनते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे और तुषार की टीम में लगभग सारे लोग उधर के ही थे जो बाद में पिता से जुड़ गए थे। इन्हीं लोगों ने अब ऑफिस को घेरना शुरू कर दिया था। पिता तो घर पर थे नहीं, तुषार मिल जाते। ट्यूशन ही आय का स्रोत था इस लिए तुषार छुप कर कहीं बैठ नहीं सकते थे। कई बार तुषार ने उन लोगों को समझा बुझा कर वापस किया था, पर पिता किसी भी कीमत पर घर आने को तैयार नहीं हुए। जब लोगों को द्वारिका प्रसाद नहीं मिले तब उनका रोष बढ़ा और निशाने पर तुषार आ गए। फिर तो अगला–पिछला सब उन्हीं पर टूट पड़ा।

दोनों हर पल दहशत के साए में जी रहे थे। बच्चों के साथ कोई अनहोनी न हो जाय, इस लिए तुषार उन्हें स्कूल छोड़ने और लेने जाते। अब धमकियों ने जोर पकड़ लिया था। वे लोग घर पर आकर धमका रहे थे, पर इन सब बातों का बाकी परिवार पर कोई असर नहीं था।

उस रात तुषार खाने पर बैठे ही थे कि गेट खटक गया। उसके प्राण हलक में आ फँसे। दोनों ने सहम कर एक दूसरे को देखा। तब तक फिर से गेट खटका। तुषार ने रोटी का टुकड़ा थाली में रख दिया और उठकर गेट की ओर बढ़ गए। पीछे–पीछे इला, पर घर से और कोई नहीं निकला।

गेट खोलते ही एक धीमी पर कड़क आवाज कानों के पर्दे से टकराई, "इधर आओ।" उसकी रीढ़ में सिहरन दौड़ गयी। तुषार उस व्यक्ति के साथ आगे बढ़े ही थे कि वह पीछे से चीख पड़ी, "कहाँ ले जा रहे हो इन्हें?"

तुषार ने घूम कर अपने होंठों पर उँगली रख कर उसे चुप रहने को कहा और आगे बढ़ गए। पीछे वह भी निकल आयी और सड़क किनारे सरकारी नल के पास खड़ी हो गई। वह तुषार को ले कर चौराहे पर खड़ी वैन की ओर बढ़ गया जहाँ पहले से ही दो तीन लोग खड़े थे। वह थरथर काँप रही थी।

जनवरी माह की सर्द रात थी। सभी के दरवाजे बंद थे। घर से हमेशा की तरह आज भी कोई नहीं निकला था। तुषार देर तक उन लोगों से बातें करते रहे। वह खड़ी देवता पीतर मना रही थी। आराम से बातें होते देख उसके मन में आस बँधी। उसे लगा कि अभी सब लोग चले जायेंगे और तुषार लौट आयेंगें कि तभी अचानक न जाने क्या हुआ कि उन लोगों ने तुषार को वैन में धकेल दिया। पलक झपकते ही सारे वैन में समा गए और वैन कब छू मंतर हो गयी, पता ही नहीं चला। क्षण मात्र में ही सब कुछ हो गया था। डर से उसकी घिग्घी बँध गयी। मुँह से बोल ही न फूटा। जिह्वा तालू से जा लगी। वह कब तक जड़ खड़ी रही, उसे कुछ पता नहीं।

"क्या हुआ भाभी! इतनी रात में आप यहाँ क्यों खड़ी हैं?" बाल्टी खटकने के साथ ये आवाज सुन कर उसे लगा कि वह अभी जीवित है।

"वे लोग भैया को उठा ले गए। उन्हें बचा लो, बचा लो उन्हें !" वह बिलख कर रो पड़ी।

"मम्मा, क्या हुआ मम्मा!"

"भैया को बचा लो, वे लोग ले गए उन्हें।"

"मम्मा...मम्मा !"

आवाज सुन कर वह अचकचा कर उठ बैठी है। चेहरा आँसुओं से तर है। "भैया ठीक हैं मम्मा! वे तो पहुँच भी गए। अभी उनका मैसेज आया है। मुझे लगा आप सो रही हैं तो नहीं जगाया। कोई बुरा सपना देखा होगा आपने।" छोटा बेटा उसे झकझोरते हुए बोले जा रहा है।

भोर का उजाला चुपके से खिड़की के रास्ते कमरे में उतर आया है और सामने ही शोकेस के भीतर रखे तुषार के चित्र को वह सूनी आँखों से एक टक्क देखे जा रही है।

•

पता : 437–दामोदर नगर,
वर्रा कानपुर–208027 (उ.प्र.)
मो. : 9838944718

बूढ़ी मैना : दो स्थितियाँ

❑ अनिता गोपेश

पति पत्नी में कल रात देर तक झगड़ा होता रहा। मुद्दा वही पुराना बूढ़ी–बहरी अम्मा जो बरसों से उनके दाम्पत्य जीवन पर एक बुरी छाया की तरह पड़ी हुई हैं। यह केमिस्ट्री आज तक अखिल को समझ में न आई कि जिस लड़की का मन माँ के लिए हमेशा सदाशयता से लबालब भरा रहता हो उसी लड़की के मन में सास के लिए प्यार ममता तो दूर, संवेदना का कोई तार भी कहीं झिलमिलाता नहीं दिखता। कर्तव्य का निर्वाह मात्र और वह भी इतनी अवज्ञा और कटुता के साथ। अखिल उन मर्दों में से कभी नहीं रहा जो अपनी पत्नी से ज़ोर जबरदस्ती करता या अपनी इच्छा पत्नी पर लाद देता। उसने हमेशा तर्क देकर मनाने की कोशिश की। पर शादी के इतने वर्षों बाद अब मनाने की कोशिश भी बन्द कर दी। हथियार डाल दिया।

कल सुबह कॉलेज जाते समय नमिता अपना टिफिन बनाकर ले गई। उसके निकलने तक किसी की हिम्मत नहीं होती कि किचेन में झाँक भी सके। सुबह एक–एक कप चाय जो वह सिरहाने रख देती है वही जैसे भार हो जाता है, अखिल और माँ पर। चाय कैसी बनी, कैसी नहीं, यह पूछने का अधिकार न तो नमिता ने दिया ना ही कोई उससे ले सकता था। उसका एक ही जवाब होता जो सब जानते हैं–"इतना नखरा हमसे नहीं उठाया जाता। इतनी ही नापसन्द है तो अपने आप बना लिया करो।" माँ चुप रहना नहीं जानती– कुछ नहीं बोले तो भी मुँह बिचका कर चाय बेसिन में डाल आती थी। उसके चले जाने के बाद खुद अपनी चाय बना लेती थी, साथ ही उसके लिए भी और आवाज़ दे देती थी–"बब्बू आके चाय पी लो" पर जब से उनको परकिन्संस रोग ने थाम लिया है, कोई काम अपने आप नहीं कर पाती। जो जैसा मिल जाता है उसे चुपचाप खा–पी जाती है। जिस घर में एकमात्र सत्ता के रूप में उन्होंने बरसों राज किया उसी घर में उनकी निरूपायता–निस्सहायता देख अखिल का संवेदनशील मन रो उठता है। चार–चार बेटों की माँ, आज घर के किसी कोने में डरी सहमी बैठी रहती है, गो कि कभी–कभी अब भी पुरानी दबंगई से काम ले ही लेती हैं वे। जहाँ सब टी.वी. देख रहे होते उस कमरे में जबरियन आकर बैठ जातीं। कभी ड्राइंगरूम में मेहमान आया

देख वहीं आकर बैठ जातीं सबके बीच में। बात सुन न पाने की स्थिति में हर बात पर नासमझी से मुस्कराती रहती है। उन्हें ऐसा करते देख अखिल को हमेशा माँ एक बच्ची सी लगती और वह हँस देता, पर नमिता इतने पर आग बबूला हो जाती– ''एक अक्षर भी सुन नहीं सकती पर जैसे ही मेरे मिलने वाले घर आएगें, आकर बैठ जाएगी, सोफे पर पाँव चढ़ाकर। मुझे समझ में नहीं आता, ऐसा क्यों करती है अम्मा।''

''तुम्हें तो समझ में आना चाहिए नमिता मनोविज्ञान पढ़ा है तुमने। एक अरसा हो गया उन्हें घर से निकले, जी घबड़ा जाता है घर में एक तरह से बैठे–बैठे। लोगों को देख कर बैठ जाती होंगी।''

अखिल समझाते तो नमिता और फैल जाती। ''इतनी उमर होने को आई, ये तो नहीं कि कुछ भगवत भजन करे हर समय मन चंचल बना रहता है। अरे बाबा, इतना जी ऊबता है घर बैठने से तो जाती क्यों नहीं अपने दूसरे राजकुमारों के यहाँ? क्या उन्हें झेलने और पालने का ठेका हमने ही लिखवा रखा है। उन तीनों का भी कुछ फर्ज़ है कि नहीं।''

''मानता हूँ कि उनका भी फर्ज़ है, पर वे नहीं करते तो क्या इसीलिए मैं भी करना छोड़ दूँ। माँ है वे नमिता, कूड़े का ढेर नहीं कि किसी भी घूरे पर फेंक आऊँ।'' अखिल का धैर्य जवाब देने लगता।

''घूरे पर फेंकने की नहीं, मैं वृद्धाश्रम में भेजने की बात कर रही हूँ। अरे रंजू अपने संग नहीं ले जा सकते तो कम से कम पैसा तो भेज सकते हैं। पर नहीं। क्यों भेजेंगे यहाँ बैठे हैं ना एक श्रवण कुमार। सब कुछ करने को।''

''ऐसा कुछ खास हम नहीं करते कि श्रवण कुमार की बराबरी कर सकें। खाना तक तो उनको बना कर देना बन्द कर दिया है तुमने।'' अखिल के मन में दबी शिकायत ज़ाहिर हो जाती।

''हाँ। कर दिया है। और नहीं ही बनाऊँगी। इनकी शर्तों पर मैं काम नहीं कर सकती। पूरी जवानी होम कर दी मैंने, उनके हिसाब से काम कर करते–बच्चे पाले, बड़े किए, सोचा अब ज़िम्मेदारी ख़त्म हुई। कुछ चैन की साँस लेंगे। पर नहीं, चैन नमिता की किस्मत में कहाँ। मेरी भी उमर हो रही है। अब मुझसे नहीं होता इतना सब कुछ। सुबह–सुबह नहाओ तब उनका कच्चा खाना बनाओ। पक्का वह नहीं खाएगी, पेट खराब हो जाता है। इतना प्रेम है तो तुम खुद ही बना लिया करो। या रख लो कोई नौकरानी उन्हीं का काम करने के लिए।'' नमिता जानती है कोई काम करने वाली रखने की आर्थिक स्थिति नहीं है उनकी। तब भी ताना देने से बाज नहीं आती। अखिल को पत्रकारिता से पैसा इतना नहीं मिलता कि कह सकें – मैं बोझ उठा लूँगा नौकरानी का।

अखिल को आफिस देर से जाना होता था। अखिल ने कोशिश की खुद काम करने की। कभी चौके में झाँका नहीं था। माँ ने कभी काम करवाया ही नहीं। पहले पहल तो बर्तन ही न समझ में आए। बड़ी मुश्किल से समझ में आए तो कुकर में दाल, चावल भिगोया, पर पानी कितना चढ़ाएँ समझ में नहीं आया। हार कर माँ को बुलाना पड़ा– माँ ने उसे पहली बार कुकर और गैस से जूझते देखा तो उनके चेहरे पर बहुत पहले की खोयी हुई हँसी खेल गई। ताली बजाकर खुलकर हँसी माँ–अखिल को अच्छा लगा। नन्दिता की याद बेतरह आई जब–तब दादी और माँ के बीच सेतु का काम करती रही थी। उसके जाने के बाद माँ एकदम अकेली पड़ गई थीं। पुरानी वाली माँ आज वापस आ गई थी– हँस कर बोली, ''हटो, जाओ अपना काम करो, हम बना रहे हैं। उनकी इस भूली हुई छवि में मगन, अखिल कमरे में आ अपनी न्यूज़ बनाने में लग गए। अचानक से कुछ गिरने की आवाज़ आई तो भागे अखिल। माँ काँपते हाथों से कुकर को पकड़े हुई बुरी तरह काँप रही थी। कुकर का ढक्कन छिटक कर दूर गिरा हुआ था। माँ के कमर से नीचे तक उबली हुई दाल छाई हुई थी। अखिल ने कपड़े उतारने को कहा तो तैयार नहीं हुई। गोद में उठाकर लाया उन्हें बमुश्किल तमाम चादर से ढँककर उनके कपड़े उतारे किसी तरह। कमरे में फ्रिज से बरफ निकाल कर दिया उन्हें मलने को। डॉक्टर को घर बुलाया, डॉक्टर ने बताया, बाल–बाल बच गयीं। बर्न बहुत डीप नहीं है, कुछ दिन ख़याल रखना पड़ेगा, ठीक हो जाएगी, पर सवाल वही, ख़याल कौन रखेगा? और इसी के चलते नमिता से रात भर झगड़ता रहा था अखिल।

''अगर कुछ माँ के लिए बना कर गई होती तो आज ये नौबत न आती।'' दरअसल अपने किए पर अपराध–बोध कहीं नमिता को भी कचोट रहा था। अखिल के सीधे–सीधे लगाए गए आरोप पर उल्टा ही वार कर बैठी, ''हाँ हाँ, इतने वर्षों से घर में जो कुछ भी हुआ उस सब में मेरी ही गलती। तुम्हारी तो जैसे कोई गलती ही नहीं है।''

''अब इस पूरे प्रकरण में मेरी गलती बस यही तो है कि मैं उन्हें किचेन में छोड़ आया, इसके अलावा क्या है मेरी गलती बताओ।''

''आज की बात नहीं है अखिल। पूरे जीवन की मूल समस्या ये है कि तुम कोई ढ़ंग की नौकरी ही नहीं ढूँढ़ पाए।

घर की सारी ज़िम्मेदारियों के लिए मुझे नौकरी करनी पड़ी। तुम ढ़ंग से कमा रहे होते तो मैं घर बैठती और तब तुम्हारी अम्मा की सेवा टहल अच्छी तरह से कर पाती। दरअसल तुम्हें अपनी शर्तों पर ज़िन्दगी जीने की इतनी ही ज़िद थी तो तुम्हें शादी नहीं करनी चाहिए थी।''

''मैं एक दिन भी कभी खाली बैठा क्या? जितना हो सकता है कमाता ही हूँ।''

''उतने से काम चलता होता तो मुझे नौकरी नहीं करनी पड़ती।'' रिश्तों का स्वरूप तय करने में आर्थिक समीकरण का बड़ा हाथ होता है– समझ में आने लगा है अखिल को। सचमुच अपनी स्वतन्त्रचेता ज़िन्दगी के चलते उसे घर गृहस्थी का झमेला नहीं पालना चाहिए था।

आवाज़ को दबाकर बहुत धीमे से बोलने की कोशिश की अखिल ने– ''माँ के प्रति तुम्हारी कड़वाहट की वजह तुम्हारा नौकरी करना या मेरा नौकरी न कर पाना नहीं है नमिता। आख़िर को अपनी नौकरी के बावजूद तुम अपनी माँ और अपने परिवार के लिए तो मधुरता बनाए रख पाती हो। तो माँ के साथ ये तिरस्कार का भाव क्यों?''

''हाँ। जैसे मैंने तो इतने वर्षों में तुम्हारी माँ के लिए कुछ किया ही नहीं? ठीक है नहीं किया तो नहीं किया। और आगे जो करती थी वह भी नहीं करूँगी।'' खीझ को छिपाने के लिए अब ढ़िटाई पर आ गयी थी नमिता। चीखने लगी थी। अखिल ने आग्रह किया, ''नमिता, धीरे बोलो। मैं चीख नहीं रहा हूँ, तुम भी चिल्लाओ मत।''

''मैं तुम्हारी तरह सुसंस्कृत नहीं हूँ भाई क्या करूँ? गँवार हूँ और गँवार की तरह चिल्ला कर ही बोल सकती हूँ।'' ऐसे बिन्दु पर आकर बात आगे बढ़ा पाना अखिल के लिए एकदम असंभव हो जाता है।

रात भर के अबोले और तनाव के बाद, ब्रह्म मुहूर्त में भैरवी गाए जाने की बेला में यह निर्णय लिया गया कि माँ को वृद्धाश्रम ही भेज दिया जाए।

मैंने उनके बुजुर्गवार बेटे से पूछा ''आपका घर तो इतना बड़ा है। आपने इनको ड्राइंग रूम में क्यों स्थापित कर दिया है, एक कमरा क्यों नहीं दे दिया उनको।'' जवाब सुनकर बाद में अपने सवाल पर ही शर्मिन्दा होना पड़ा। उन्होंने बताया, ''मेरी माँ बड़ी जीवन्त व्यक्तित्व रही हैं। मैना की तरह बोलने की आदत है उन्हें। चल फिर वो पाती नहीं, ऐसे में घर के किसी कोने में डाल देने का मतलब था उन्हें जीवन के अन्त से पहले ही जीवन से काट देना। इस जगह होने से जीवन से जुड़ी रहती हैं। वो जब चाहती हैं ड्राइंगरूम में आए मेहमानों में अपने को शामिल कर लेती हैं। जब चाहती हैं उधर डाइनिंग टेबिल पर परसे जाते खाने की टोह ले लेती हैं। चाहती हैं तो सूंघ कर या कभी अपनी बहू से पता कर लेती हैं, रसोई में क्या बन रहा है। हमारे यहाँ आने वाले सभी उम्र के सभी लोगों को उनके यहाँ होने पर कुछ बुरा नहीं लगता। बल्कि अच्छा ही लगता है।

कान की बहरी अम्मा को लिख–लिख कर समझाया अखिल ने कि ''उनके लिए, उन सब के लिए यही बेहतर है।'' आश्चर्य की बात–अम्मा ने सहज ही स्वीकार लिया इस प्रस्ताव को। बहुत समय से माँ घर में सिर्फ एक तोते से बोला करती थी। अपना झोला–बक्सा लिए माँ तैयार थी। शायद एक नए वातावरण में जाने का उत्साह भी था। साथ ही घर परित्याग का दुःख भी। बेटे से क्या कहे। उसका उतरा चेहरा वह कई दिनों से देख रही थी। पिंजरे के सामने पहुँची। तोते से बोली, ''मिट्ठू बेटा। भइया का ख़याल रखना। और सीताराम सीताराम बोलते रहना, अच्छा। हम जा रहे हैं। हमें याद करोगे ना?'' मिट्ठू आँखें मिचमिचा–मिचमिचा कर समझने की कोशिश करता रहा।

और बूढ़ी मैना चली गई। घर पर मुर्दनी के जैसा सन्नाटा छाया रहा।

स्थिति दो

नागपुर में एक महीने के कोर्स के लिए आई थी। सुबह टहलने जाती तो एक घर की दीवार और गेट पर चढ़ रही एक बेल को ध्यान से देखती, एक दिन थोड़ा करीब जाकर देखने लगी थी कि मेन गेट खुल गया। कमर पर हाथ रखे ट्रैक सूट में एक सुदर्शन से बुजुर्ग खड़े थे। मैं अकबका गई, ''मैं वह बेल देख रही थी। पहले कभी देखा नहीं। कौन सी है?''

''हाँ तो अन्दर आकर आराम से देखिए।'' मन्द–स्मित हास के साथ साग्रह चाय का न्यौता भी। अन्दर जाना पड़ा, ड्राइंग रूम में बैठी तो एक तरफ खिड़की के पास एक तखत पड़ा हुआ दिखा। कोई सो रहा था अभी। परिवार के सभी लोगों से परिचय हुआ। महाशय इंजीनियरिंग कॉलेज के अवकाश प्राप्त अध्यापक थे। उनकी पत्नी भी किसी कॉलेज में शिक्षिका थी। तीन बेटे, तीनों बाहर नौकरी करते रहे थे, पर तीसरी पीढ़ी के बच्चे यहीं मेडिकल और इंजीनियरिंग पढ़ रहे हैं।

पता चला ड्राइंग रूम में पड़ा तखत घर की सबसे बुजुर्ग ''आई'' यानी दादी की 'राजगद्दी' है। घर पर अभी भी

उनका शासन चलता है, खुशी–खुशी। उस तख़्त पर जब उनका मन करता है बैठती हैं जब मन करता है सोती है। जब मन करता है, बगल में रखे छोटे रेडियो से गाने सुनती हैं। जब मन करता है डाइनिंग हाल की परली तरफ रखे टी.वी. पर पसन्दीदा कार्यक्रम देखने लगती हैं। मुझसे उनका परिचय हँस कर कराया, उनके साठ के ऊपर के पुत्र ने ''आई, देखो यह कौन है। ये तुम्हारे इलाहाबाद से आई हैं'' पता चला उनका बचपन और जवानी यहीं इलाहाबाद में बीते था। इलाहाबाद में इन्दिरा गाँधी ने किशोरावस्था में जो वानर सेना बनाई थी उसमें वे भी शामिल रही थीं। उनके तख़्त पर ही उनके ठीक सामने बिठा दिया था उनके बेटे ने। आई ने पास की खिड़की से उठाकर अपना चश्मा लगाया और अपना चेहरा मेरे चेहरे के पास लाकर, लगभग आँखें गड़ा कर ही मेरा चेहरा देखा और बोली ''आहा! कैसी तोता सुआ सी नाक है। आजकल तो ऐसी नाक देखने को ही नहीं मिलती।'' उनके कन्धे से कन्धा लगा बैठी उनकी पोती ने हँस कर उनसे कहा, ''दादी, अच्छी तरह देख लो। कहो तो एक फोटो खींच कर रख दूँ। पता नहीं फिर ऐसी नाक देखने को मिले या न मिले।'' कमरे में खिल–खिल करती हर उम्र की हँसी गूँज गई। उनमें पोती की सहेलियाँ भी थीं, उनके बेटे, बहू की हँसी भी थी। अपना पूरा घर दिखाया उन्होंने देखते–देखते ख़याल आया कि घर तो काफी बड़ा है। उसमें कई कमरे भी हैं। तो फिर घर की बुजुर्ग ''आई'' को ड्राइंग रूम के कोने में क्यों जगह दी गई।

मैंने उनके बुजुर्गवार बेटे से पूछा ''आपका घर तो इतना बड़ा है। आपने इनको ड्राइंग रूम में क्यों स्थापित कर दिया है, एक कमरा क्यों नहीं दे दिया उनको।'' जवाब सुनकर बाद में अपने सवाल पर ही शर्मिन्दा होना पड़ा। उन्होंने बताया, ''मेरी माँ बड़ी जीवन्त व्यक्तित्व रही हैं। मैंना की तरह बोलने की आदत है उन्हें। चल फिर वो पाती नहीं, ऐसे में घर के किसी कोने में डाल देने का मतलब था उन्हें जीवन के अन्त से पहले ही जीवन से काट देना। इस जगह होने से जीवन से जुड़ी रहती हैं। वो जब चाहती हैं ड्राइंगरूम में आए मेहमानों में अपने को शामिल कर लेती हैं। जब चाहती हैं उधर डाइनिंग टेबिल पर परसे जाते खाने की टोह ले लेती हैं। चाहती हैं तो सूंघ कर या कभी अपनी बहू से पता कर लेती हैं, रसोई में क्या बन रहा है। हमारे यहाँ आने वाले सभी उम्र के सभी लोगों को उनके यहाँ होने पर कुछ बुरा नहीं लगता। बल्कि अच्छा ही लगता है। देखिए ना डॉली की जितने दोस्त आते हैं सबसे 'आई' का अच्छा परिचय है। सब पहले ''आई'' से ही दुआ सलाम करते हैं।''पलट कर पूछा मुझसे – ''क्यों आपको अच्छा नहीं लगा आई से मिल कर?'' उनके प्रश्न ने मुझे अवाक कर दिया। हम लोगों की बातचीत के बीच पता नहीं कब आई चादर ओढ़ लेट गई थीं। उनके बेटे ने धीरे से उधर इशारा करके कहा, ''देखिए, आपसे बेखबर वो चादर तान के सो गईं।'' अन्दर से चाय लेकर आती उनकी पत्नी ने ट्रे डाइनिंग टेबिल पर रखकर आई की आँख से चश्मा उतार कर खिड़की पर रखा और चादर उनके कन्धे तक ढँक दिया। बेटे ने माँ की तरफ प्यार से देखते हुए कहा, ''आई अभी भी पूरे घर की सत्ता है। उन्हें उनकी सत्ता से कोई बेदखल नहीं कर सकता।'' और हम अपनी चाय ले अपनी बातों की तरफ मुड़ गए।

अन्दर से मेडिकल कॉलेज जाने की तैयारी के साथ डॉली निकली। दादी को ''बाय'' कहते कहते धीमी पड़ गई, ''लो आई का भी बस कुछ पता ही नहीं चलता। इनका तो बस स्विच है। कब आन कब ऑफ पता ही नहीं चलता।'' घर की गृहणी ने बेटी से कहा'' मैं बता दूँगी उन्हें जागने पर। तू जा।'' फिर मेरी तरफ मुड़ कर बोली, ''देख रही हैं कितनी स्पेस घेरती हैं आई हमारे घर में। हम तो कल्पना नहीं कर पाते उनके बिना ये जगह कितनी खाली लगेगी। सो जाती है तो घर में सन्नाटा हो जाता है।'' और जेहन में आए किसी बुरे ख़याल को झटकते हुए जैसे बात बदल देती है।

मैं जितने दिन रही वहाँ, उस घर का हिस्सा हो गई। कभी सुबह, कभी शाम, कभी रात वहाँ जाना होता जिसमें बहुत बड़ा आकर्षण ''आई'' की इलाहाबाद की स्मृतियों का ब्योरा सुनने का होता था। अक्सर याद आती हैं आई और उनका वह परिवार।

पाठकों बहुत बार सोचती रही हूँ इन दो स्थितियों के बारे में। आप के सामने दो स्थितियाँ रखकर आपसे ही सवाल करना चाहती हूँ। दोनों स्थितियों में फर्क क्या केवल परिवार की माली हालत यानी आर्थिक स्थिति का ही है? या कुछ और भी है जो हमारी पकड़ से बाहर है। बूढ़ी मैना उड़ तो नहीं सकती। बोलना ही तो चाहती है। उसे बोलने देना इतना कठिन है क्या? और बूढ़ा तो सभी को होना है।

•

पता : एफ–204, प्रियदर्शिनी अपार्ट.–28,
एस.एन. रोड, इलाहाबाद–211001
मो. : 9335107168

कनेर के फूल

❑ प्रदीप उपाध्याय

बहुत दिनों बाद उसे कनेर का फूल दिखा। दिलकश पीले रंग का। पीला रंग उसे शुरू से ही पसंद रहा है। बचपन में अक्सर कनेर के फूल नजर आ जाते थे। मोहल्लों में, लोगों के मकान के आगे बने लान में या फिर म्युनिसिपिलिटी के पार्क में। अब तो फूल गायब ही होते जा रहे हैं। बाजार में बिकने लगे हैं। गुलदस्तों में सजने लगे हैं। प्लास्टिक के सुर्ख फूलों की भरमार है। ये इतनी सफाई के साथ बने होते हैं कि अक्सर लोग बाग धोखा खा जाते हैं। फूलों से उसका लगाव कम उम्र से ही हो गया था। वह हर रोज अपनी क्लास टीचर के लिए सुंदर खिले गुलाब के फूल ले जाता था। मिसेज कैलप इससे बहुत खुश होतीं और अपने बैग से निकालकर एक टाफी उसे थमा देतीं। उसका सुलेख नयनाभिराम होता था। वह अक्सर जी – निब से चार रूल की इंग्लिश वर्क बुक में करसिव राइटिंग किया करता था। हिंदी में भी अक्सर उसकी लिखावट सबको भाती थी। सभी कहते थे कि उसके द्वारा लिखे गए शब्द मोतियों की तरह चमकते हैं। वह साफ सुथरे इस्त्री किए हुए कपड़े पहनकर स्कूल जाता था। अपने जूते पालिश करना, वक्त से उठना, नहाना और अच्छे बच्चों की तरह डिसिप्लीन्ड होकर स्कूल पहुंचना उसकी दिनचर्या थी।

बचपन से ही वह बेहद शांत प्रकृति का बच्चा था। उसकी नीली आंखें अक्सर उम्मीद से जगमगाती रहती थीं, मानों सपने रुई के फाहों की तरह हरदम आंखों में तैर रहे हों। धमा चौकड़ी मचाने, उधमबाजी करने और शरारतों से वह कोसों दूर रहता। इसी वजह से अपने घर, मोहल्ले और स्कूल में वह सबका लाड़ला था। उसने गिनती और पहाड़ों के साथ–साथ हिंदी और अंग्रेजी की कविताएं याद करना शुरू कर दिया था। उसे अपना पाठ अच्छी तरह से याद हो जाता। होम वर्क करने से वह कभी जी नहीं चुराता था। हर साल उसे तिमाही, छमाही और सालाना इम्तहान में शानदार नम्बर मिलते थे। वह अक्सर क्लास में फर्स्ट या फिर सेकेंड पोजीशन पर रहता था। उसके अध्यापकों को लगता कि एक दिन बड़ा होकर जिंदगी में वह जरूर कुछ ऐसा काम करेगा कि देश दुनिया में न सिर्फ उसका नाम रौशन होगा बल्कि उसके मां–बाप और स्कूल को भी गर्व होगा। अपने आसपास रहने वाले तमाम लोगों की वह उम्मीद बन चुका था।

उसकी उम्र के तमाम बच्चे पतंगें उड़ाते, गुल्ली–डंडा खेलते, कंचों के लिए झगड़ते या फिर चोरी छिपे क्लास से भागकर खेल के मैदान में पहुंच जाते थे। कुछ बड़ी उम्र के बच्चे पैसे चुराकर नशाखोरी करते और सिनेमा भी देखते थे। उसके स्कूल और घर के पास रह रहे तमाम बड़ी उम्र के बच्चों ने साइकिल चलाना शुरू कर दिया था। ऐसे बच्चों को लेकर उन सबके मन में अजीब किस्म का आकर्षण था। वे उनके रोल मॉडल बनकर उभर रहे थे। एक मुसीबत भी थी, गणित उसके लिए नयी दिक्कत बनती चली जा रही थी। जब तक अंकगणित पढ़ाई गयी वह अव्वल आता रहा लेकिन जबसे अलजेबरा और ज्यामेट्री ने दखल दिया वह फिसड्डी साबित होने लगा। फिजिक्स ने रही सही कसर पूरी कर दी लेकिन यह काफी आगे चलकर हुआ। शुरुआत में तो उसका जलवा कायम ही रहा।

जिंदगी में आगे चलकर उसने कई काम किए लेकिन न तो उसे साइकिल चलानी आई और न ही उसने अलजेबरा और फिजिक्स में खुद को मजबूत किया। जिंदगी आसान रास्ते दिखाती है और लम्बा घुमावदार रास्ता भी। यह लोगों को तय करना होता है कि वे किन राहों पर चलेंगे। कुछ मामलों को लेकर उसने भी आसान राह चुनी। वैसे कुल मिलाकर उसका रवैया पॉजीटिव था, उसे अपनी काबीलियत पर भरोसा था। वह सिनेमा देखने का शौकीन था। थिएटर जाना और रेडियो पर पुराने फिल्मी गाने सुनना उसका शगल बन गया। जब दूरदर्शन ने घरों में दस्तक देना शुरू किया वह चित्रहार का मुरीद बन गया।

मां ने घर के आंगन में ढेर सारे पौधे लगा रखे थे। वह इनकी देखभाल में चौबीसों घंटे जुटी रहती। गेंदा, चम्पा, चमेली, गुड़हल, गुलाब और हरसिंगार के फूल थे। वह सुबह–शाम इन पौधों की निराई गुड़ाई करती। इनमें उग आई घास तथा खर पतवार साफ करती। वक्त से पानी देती। मां का लाड़ प्यार पाकर यह तमाम पौधे भी उसके भाई बहनों की तरह बढ़ रहे थे। लहलहा रहे थे और अपनी महक बिखेर रहे थे। एक नीम का पेड़ था उसके घर के सामने।

वह आगे की पढ़ाई करने नैनीताल चला गया। अखिल भारतीय आवासीय छात्रवृत्ति की परीक्षा में कामयाबी के बाद उसे नैनीताल के एक नामी गिरामी पब्लिक स्कूल में पढ़ने का मौका मिला। वह पिता के साथ पहली बार घर से इतनी दूर बाहर निकला था। इससे पहले वह अपने गांव और ननिहाल तक ही गया था, जो गोरखपुर शहर से बमुश्किल पचास साठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित थे।

उसे अपने गांव में आम के बाग और तालाब बेहद भाते थे। बाग बेहद घनी थी और उसमें आम, जामुन, महुआ, कटहल, बरगद, पीपल के बहुतेरे सघन वृक्ष थे। इतने घने थे कि सूरज की रोशनी बमुश्किल ज़मीन पर दिखाई देती थी। तालाब बहुत चौड़ा था। बड़े बुजुर्ग बच्चों को हिदायत देते रहते थे कि वे अकेले तालाब पर न जाएं। वहां गहरा पानी है। तालाब के एक किनारे पर एक कतार में लगे सात ताड़ के वृक्ष थे। इन ताड़ के वृक्षों को देखकर उसके मन में अक्सर बहुत कुछ उमड़ता घुमड़ता रहता था।

जब वह अपनी ननिहाल जाता तो अक्सर ममेरे भाई के साथ नदी के घाट पर चला जाता। कुआनो नदी उसके मामा के घर से बमुश्किल एक–डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर थी। उसे नदी में तैरना बेहद भाता। वह नदी के रेत पर घंटों नंगे पांव दौड़ता रहता। वह और उसका ममेरा भाई खेतों से तरबूज और ककड़ी उठा लाते। क्या मस्ती के दिन थे वह।

सुबह के वक्त उगते सूरज की लाली और शाम को ढलते सूरज की किरणें उसे अनिर्वचनीय सुख और आनंद से भर देतीं। चौदह–पंद्रह वर्ष की वय थी उसकी। उन्हीं दिनों गीत गाता चल सिनेमाघरों में चल रही थी। इस फिल्म का युवा नायक खेतों–खलिहानों, प्रकृति के सुरम्य स्थलों के बीच गीत गाते हुए मुक्त पंछी की तरह विचरण कर रहा था। उसे इस तरह निर्बाध घूमते, मस्ती में गुनगुनाते हुए भटकते देखकर मज़ा आता। जीवन के उन आनंददायक पलों को वह आज तक नहीं भूल सका है। यह उसकी स्मृतियों में कहीं गहराई तक धंसी हुई हैं। उसका मन करता कि वह पक्षी बन जाए और खुले आसमान में दूर तक एक लम्बा चक्कर लगाकर लौट आए या फिर मछलियों की तरह गहरे पानी में तैरता रहे। हिरन की तरह कुलाचें भरता फिरे।

वह नैनीताल के लिए एटी मेल से रवाना हुआ। उन दिनों गोरखपुर से लखनऊ तक मीटर गेज हुआ करती थी जिस पर अवध तिरहुत मेल चला करती थी। यह सुबह के वक्त गोरखपुर से चलकर दोपहर साढ़े बारह एक बजे के करीब लखनऊ जंक्शन पहुंचती थी। यहां से देर रात काठगोदाम एक्सप्रेस रवाना होती जो सुबह आठ नौ बजे के करीब काठगोदाम पहुंचती थी। देर रात लालकुआं के बाद से यह ट्रेन उलटी चलने लगती थी। दो–दो इंजन लगते, जो पहाड़ी पर ट्रेन को आगे खींचते थे, तब भी यह काफी धीमी रफ्तार से आगे बढ़ती। काठगोदाम से बस या फिर टैक्सी से नैनीताल का सफर पूरा होता। जिंदगी में पहली बार काठगोदाम से नैनीताल जाते वक्त पहाड़ के दर्शन हुए। इन पहाड़ों को देखकर उसे लगा कि वह कितना बौना है।

उन दिनों पहाड़ पर प्रदूषण और अवैध निर्माण का नामोनिशान नहीं नजर आता था। अब तो शिमला, नैनीताल और मसूरी खासे गर्म होने लगे हैं। पहाड़ों के जंगलों में आये

दिन लगती आग, बादलों के फटने, भूस्खलन और मकानों के धंसने की खबरें टीवी पर नजर आने लगी हैं। अखबारों में आये दिन ऐसी खबरें छपती रहती हैं। लगता है कि पहाड़ किसी से नाराज हैं। एक वक्त था जब पहाड़ों पर पेड़ों को काटने से रोकने के लिए औरतें और बच्चे उसके तनों से लिपटकर खड़े हो जाते थे। अब तो जंगल माफिया, अफसर और ठेकेदार का राज चलता है।

जब वह 1975 की जुलाई में बीस तारीख को नैनीताल के तल्लीताल में अपने पिता के साथ पहली बार बस से उतरा तो उसे अपने घर की याद यकायक सताने लगी। वह मायूस होकर सुबकने लगा कि उसे यहां नहीं पढ़ना है। वापस अपने घर और शहर लौट जाना चाहता है। पिता ने उसे समझाया कि कितना अच्छा स्कूल है, यहां पढ़ोगे तो बहुत कुछ सीखने का मौका मिलेगा। हॉस्टल में और बच्चे भी तो अपने मां–बाप से दूर रहते हैं और फिर दिक्कत क्या है, मैं, तुम्हारी मां तथा बहनें तुमसे मिलने–जुलने आया करेंगे। पिता ने कहा जरूर लेकिन दाखला करवाने के बाद वे कभी मिलने नहीं आये। ऐसा तब था जब उनको साल में तीन सेट पास और छह सेट पीटीओ मिला करते थे। रेलवे पास से वह समूचे भारत में कहीं भी किसी भी शहर में सपरिवार आ–जा सकते थे।

उनके न आने की तमाम वजहें थीं। इनमें एक प्रमुख वजह यह भी थी कि उन दिनों तनख्वाहें काफी कम हुआ करती थीं और परिवार एकल नहीं बल्कि संयुक्त थे। ताऊ, ताई, मौसी, बुआ, चाचा, मामा, भाई, बहनें, भतीजे, बाबा, दादी सभी परिवार का हिस्सा होते थे। गाहे–बगाहे आस–पड़ोस और मोहल्ला तक इसमें समा जाते थे, आजकल की तरह नहीं पति–पत्नी और बच्चे, वह भी पलक झपकते ही कब सयाने हुए कि अलग शहरों में जा बसे। उसके घर में अक्सर मेला लगा रहता। चचेरे, ममेरे भाई, चाचा, बुआ और मामा उसके परिवार के साथ रहते थे। यह सिलसिला कई दशकों तक बरकरार रहा। इसका नतीजा यह निकला कि वह अपने ही घर में खोया रहा किसी अंधेरे उदास कोने में। मां–बाप से कभी वह खुल नहीं सका। इसी वजह से एक अजीबोगरीब उदासी उसके भीतर समाती चली गयी। हॉस्टल आने के बाद यह उदासी और गहराई के साथ उसके अंतस में उतर रही थी। वह खामोश होता चला गया। अपने आप में ही गुमसुम और खोया हुआ। अंतर्मुखी स्वभाव बन गया उसका।

पिता तो मिलने नहीं आये कभी लेकिन उनकी चिठ्ठियां अक्सर आती रहीं। उसे पिता के साथ–साथ अपने दोस्तों के ख़तों का बेसब्री के साथ इंतजार रहता। उन दिनों वह खूब पत्र लिखा करता था। अपने भाइयों, बहनों और दोस्तों को। उन पत्रों में नैनीताल की खूबसूरती और अपने स्कूल की गतिविधियों का ब्यौरा दर्ज़ रहता। उसने घर वालों को खुशी–खुशी बताया कि आज उसने पहली बार टुडेज थाट में प्रेरक विचार एसेम्बली के दौरान व्यक्त किए। उसने शान बघारी कि ऐसा करते वक्त वह बिल्कुल नहीं डरा जबकि हकीकत यह थी कि वह बुरी तरह कांप रहा था और उसकी आवाज लड़खड़ा रही थी। वह तो भला हो प्रिंसीपल साहेब का कि उन्होंने क्लैपिंग करनी शुरू कर दी, देखते ही देखते सारा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। इसके बाद तो यह उसका शगल बन गया।

कभी वह आज के विचार प्रस्तुत करता तो कभी आज की खबरें। खबरों को तैयार करने के लिए वह रेडियो सुनने और अखबार पढ़ने लगा। पढ़ाई–लिखाई में उसका मन लगने लगा। वह अक्सर फुरसत के वक्त लाइब्रेरी में जाकर बैठने लगा। उसने सबसे पहले अभिज्ञान शाकुंतल पढ़ा। इसी क्रम में उसके हाथ विमल मित्र की फेमस ट्रायोलॉजी लगी और उसने एकमुश्त साहिब, बीवी और गुलाम, खरीदी कौड़ियों के मोल तथा इकाई दहाई सैकड़ा सरीखे तीन बड़े उपन्यास पढ़ डाले। इन उपन्यासों ने उसकी मानसिक बुनावट और सोच को तेजी के साथ बदलना शुरू कर दिया। वह कवितायें, कहानियां और निबंध लिखने की ओर प्रेरित होने लगा। नाटकों के मंचन तथा संगीत प्रस्तुति में भाग लेने लगा। उसे शरत चंद्र की देवदास और कृश्न चंदर की कहानियां लुभाने लगे। सआदत हसन मंटो की कहानियां उसके ज़ेहन में समाती चली जा रही थी। वह कल्पनाओं के नये मनोजगत में खुद को पा रहा था। नैनीताल की सुरम्य वादियां उसे इस नयी मनोरचना में सुकून और ताज़गी का अहसास दिला रही थीं।

पब्लिक स्कूल में हॉकी, क्रिकेट, फुटबाल, एथलेटिक्स, जिमनास्टिक्स तथा बाक्सिंग सबकी ट्रेनिंग उपलब्ध थी लेकिन वह फील्ड नम्बर वन, फील्ड नम्बर टू और फील्ड नम्बर थ्री जाने से कतराता रहा। इनडोर गेम्स टेबल टेनिस, कैरम से भी वह कोसों दूर रहा। ट्रैकिंग, रॉक क्लाइम्बिंग और स्विमिंग में जाने से वह कतराता, हालांकि तैरना उसे अच्छी तरह आता था। बिड़ला विद्या मंदिर के बच्चे कई ग्रुप में हर साल भीमताल जाते। नौकुचिया ताल, सात ताल, रानीखेत, अल्मोड़ा और फूलों की घाटी के ट्रिप पर जाते। एनसीसी के कैम्प के दौरान भारत भ्रमण पर निकलते। हर साल जब बोर्ड की परीक्षाओं से पहले नैनीताल में बर्फ पड़ रही होती और स्कूल बंद रहता सीबीएसई बोर्ड के दसवीं और बारहवीं के बच्चे लखनऊ स्टडी कैम्प में आते। उनका ठिकाना यहां केडी सिंह बाबू स्टेडियम के पीछे गोमती तट पर बना मोतीमहल हॉस्टल होता। आम तौर पर यह हॉस्टल लखनऊ यूनिवर्सिटी के रिसर्च स्कॉलर्स को एलॉट होता है लेकिन चूंकि बिड़ला विद्या मंदिर का मैनेजमेंट मोतीलाल मेमोरियल सोसाइटी के हाथों हैं इसलिए यह सुविधा हासिल थी। एक ज़माने में

मोतीमहल का बेहद रुतबा था, यहां चंद्रभानु गुप्त रहा करते थे जो उस वक्त उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। यह उनका एक तरह से निजी आवास था।

उसे सुदूर पहाड़ की चोटियों पर जमी बर्फ और सूर्य की किरणों के पड़ने उसका सोने की तरह दमकता रूप, शांत सुरम्य नैनी झील, चीड़, देवदार और पाइन्स के पेड़, अतल गहराई लिए घाटियां बेहद भाती थीं। वह इन्हें देखकर अक्सर गुनगुनाता रहता था। यह दिन उसकी जिंदगी के बेहद अच्छे दिन थे। इन दिनों वह अतीत से कट कर और भविष्य के प्रति चिंतामुक्त होकर सिर्फ अपने वर्तमान को जी रहा था। अपनी कल्पनाओं को शब्दों में पिरोना उसने यहीं से सीखा। शायद उसके लेखक और कवि बनने की यह शुरुआत थी। उसने गुलशन नंदा का वह नावेल कई बार पढ़ डाला जिस पर कटी पतंग बनी थी। यहीं झील में बोट पर राजेश खन्ना और आशा पारेख को देखने हजारों लोग इकठ्ठा हो गए थे। कटी पतंग, गुमराह, ज़िंदगी और तमाम फिल्मों की शूटिंग के ढेर सारे किस्से यहां के बेयरे, दुकानदार और मेट सुनाया करते थे। नैनीताल हनीमून पर आने वाले युवा जोड़ों की भी पसंद था। अक्सर सीजन के वक्त जब वह और उसके साथी टाउन टर्न पर नीचे मल्लीताल आते और माल रोड की सड़कों पर, फ्लैट्स या फिर कच्ची सड़क पर टहलते तो इन खूबसूरत जोड़ों को देखते। वे जीवन के अनुराग से भरपूर अपने में ही खोये नजर आते थे।

उसे लगता था कि बोर्ड इक्जाम में अच्छे नम्बर लाना जरूरी है ताकि घर और मोहल्ले में धाक जमी रहे। लिहाज़ा सीबीएसई के टेन प्लस टू में दसवीं के इम्तहान के दौरान उसने इतिहास और हिंदी जैसे विषयों पर ध्यान देना शुरू कर दिया। फिजिक्स को कम्पनसेट करने के लिए केमेस्ट्री और बायलोजी पढ़ना शुरू कर दिया। बायलोजी में जूलोजी और बॉटनी के बीच उसे बॉटनी ज्यादा पसंद आती। इसमें पेड़ — पौधों, फूलों, वनस्पतियों और उनकी प्रजातियों के बारे में विस्तार के साथ पढ़ाया जाता था। पेड़—पौधे हमेशा उसके इर्द गिर्द रहे। इनसे घिरा वह खुद को बेहद जीवंत और खुला हुआ महसूस करता था। उसे लगता कि फेफड़े ऑक्सीजन से लबालब भरे हुए हैं। फूलों को देखकर वह अजीबोगरीब ताज़गी से भर जाता।

सीबीएसई बोर्ड से टेन प्लस टू की डिग्री लेकर जब वह अपने शहर वापस पहुंचा तो वक्त और माहौल बदल चुका था। रिश्तों में दरारें नज़र आने लगी थीं। घर वालों की राय थी कि वह मेडिकल एंट्रेंस इक्जामिनेशन की तैयारी करे, जबकि वह दिल्ली जाकर डीयू या फिर जेएनयू से आर्ट्स साइड से ग्रेजुएशन करना चाहता था। वह एफटीआईआई पुणे या फिर एनएसडी से एक्टिंग या डायरेक्शन का कोर्स करना चाहता था। परिवार के अधिकांश बड़े लोगों को वह अपने मन की बात समझा न सका। मध्यमवर्गीय पिता को लगा कि लड़का भटक गया है। लड़के अगर डाक्टर या इंजीनियर न बनें, आईएएस अथवा पीसीएस की तैयारी न करें, बैंकिंग सेवाओं की भर्ती परीक्षाएं न दें तो मां—बाप समझते हैं कि लड़का बिगड़ गया। गया हाथ से। उसके बारे में भी यही आम धारणा जोर पकड़ती जा रही थी कि अब उसका कोई ठिकाना नहीं। वह गोरखपुर यूनिवर्सिटी से बीए कर रहा था। घरेलू राजनीति का वह शिकार हो गया। उसके दिल्ली जाने पर मझले ताऊ जी को कम लेकिन चचेरे भाइयों को ऐतराज था। परिवार के छह—सात लोग उस वक्त दिल्ली में इकठ्ठा थे और पढ़ाई कर रहे थे। उसके लिए गुंजाइश नहीं निकल सकी। पिता ने प्रतिवाद नहीं किया और वह बड़े शहर में जाने से वंचित हो गया। वंचना तथा उपेक्षा की प्रताड़ना उसने पहली बार महसूस की।

अजीब कश्मकश का दौर था वह।

उसने बीए, एमए और एमफिल कर डाला। हिंदी, इतिहास और मनोविज्ञान से बीए फिर मनोविज्ञान से एमए और एमफिल। उसका एजेंडा दूसरा ही था। वह तो नाटकों में काम करना चाहता था। फिल्मों में जाकर भाग्य आजमाना चाहता था। कई बार उसके मन में आया कि वह बम्बई (अब मुम्बई) भाग जाए और वहां जाकर स्ट्रगल करे। डिग्रियां उसने जरूर इकठ्ठा कर लीं लेकिन विषय का ज्ञान अधूरा ही था। वह लगातार दो नावों की सवारी कर रहा था। उसे लगा कि ज्यादा दिनों तक ऐसे काम नहीं चलने वाला है, उसने अपनी भविष्य की योजनाओं से माता—पिता, मित्रों, परिजनों सबको अवगत करा दिया। भूचाल आया और फिर शांत हो गया लेकिन इसके साथ ही उसे लेकर रही सही उम्मीद भी खत्म हो गयी। बेहद तकलीफ भरे दिन थे यह । पतझड़ की मानिंद। फूलों का मौसम बीत चुका था।

इस आपाधापी में बसंत पीछे छूट चुका था। कनुप्रिया की यादें हृदय के तारों को आज भी झंकृत कर देती थीं। वह प्यार से उसे कनु पुकारता। कनु ने उसे गुनाहों का देवता पढ़ने को दी थी। आज भी इसके पन्नों में सूखा पड़ा कनेर का फूल नज़र आता है। इसकी सुगंध उसकी स्मृतियों में समाई हुई है और आंखों में चटख लाल रंग आज भी मौजूद है।

•

पता : 1/74, विराज खण्ड, गोमती नगर,
लखनऊ—226010
मो. : 9695232888

गीली रोटी

❑ समरा निज़ाम

छोटे शहरों के छोटे होने का एहसास आप को तब तक नहीं होता जब तक आप किसी बड़े शहर की भीड़ का हिस्सा नहीं बनते हैं। इस भीड़ में कन्धे पर अपना बस्ता लिये भागते दौड़ते बस में घुसने के बाद जब नजरें एक पल को उन लम्बी–लम्बी ऊंची इमारतों पर पड़ती हैं जो नीचे से ऐसी नजर आती हैं मानो अभी आसमान छू लेंगी। तब आप को एहसास हो तो कि वो जो अपने घर के पास नया माल बन रहा था ना वो इतना भी बड़ा नहीं जितना घर में सब को लगता है खैर ऐसा नहीं है कि नौकरी के लिये इस से पहले घर से दूर नहीं आये हैं लेकिन इस मर्तबा इतनी दूर आ गये हैं कि यहां ज़बान भी बदल गयी है, चलिये वो तो शुक्र है कि आज हिन्दोस्तान में अंग्रेजी का चलन इतना आम हो गया है कि आप कहीं भी हों कोई न कोई मिल ही जाता है जो हिन्दी समझे या न समझे टूटी फूटी अंग्रेजी बोल और समझ जरूर लेता है।

अगर आप ने किसी बड़े शहर की बस में धक्के नहीं खाये हैं तो मैं आप को बताए देता हूं कि ये नौकरी हासिल करने जितना या शायद इस से भी मुश्किल मरहला है। और मियां अगर आप को सीट मिल गयी है तो आप जिन्दगी में कुछ बड़ा कर गुजरने की पूरी सलाहियत रखते हैं। खैर! मुझे तो आज तक सीट नहीं नसीब हुई है, पैर रखने की जगह ढूँढ कर दरवाज़े से टिक कर खड़ा हो गया।

यूं तो इस बस की भीड़ में नजरें सामने खड़े शख़्स से आगे नहीं देख पाती हैं फिर भी अगर कभी सरसरी निगाह से देखा जाये तो लगेगा कि इस बस पर एक ही शख़्स के कई हमशक्ल भरे हुए हैं। वही हलके रंग की शर्ट कहीं नीली तो कहीं सफेद किसी ने खुद को बहुत अलग दिखाना चाहा तो गुलाबी शर्ट और पैंट तो सब की वही एक काली या भूरी सभी के गाल पीछे गले में आई डी कार्ड का पट्टा और चेहरे पर आने वाले दिन की संजीदगी सब निकल पड़े हैं कहीं अपना शहर कहीं अपना खानदान तो कहीं अपना ख्वाब छोड़ कर उसी घर और खानदान और ख़्वाब का पहिया आगे बढ़ाने के लिये।

नौकरी करते कई साल हो गये हैं और कई बार दफ्तर भी बदले हैं इस के चलते अब मुझको ऐसा लगता है कि प्राइवेट दफ्तर झूट नहीं बोलते वो आप को पहला कदम रखते ही ये एहसास दिला देते हैं कि यहां महज दिखावा ही चलेगा। एक ऊँची आलीशान बिल्डिंग में आप की इंट्री होगी। रिसेप्शन पर आप को गुड मार्निंग सर कह कर गार्ड सलाम ठोकेगा। कॉरिडोर में बेशकीमती झूमर लगे होंगे और जैसे–जैसे आप अस्ल काम करने वाली जगह के करीब पहुंचते है वैसे–वैसे ये आलीशान बिल्डिंग छोटी होने लगती है। पहले कॉरिडोर अलग–अलग शोबों में बट जाते हैं फिर जोन अलग अलग डिपार्टमेंट में और फिर उस डिपार्टमेंट में होते हैं क्यू बाक्स जो महज इतने बड़े होते हैं कि एक मेज और एक कुर्सी सटा कर रखी जा सके। और उन क्यू बक्स में बैठते हैं आप और आज के वही बस वाले हमशक्ल।

मैं अक्सर सोचता हूं कि सड़क पर जाते राहगीर को क्या बाहर से इन बिल्डिगों को देख कर ये एहसास होता होगा कि अन्दर लोग कांच के दफ्तरों में सिगार का धुँआ नहीं उड़ा रहे होंगे। जबकि हक़ीकत ये है कि वो अपनी कमर तोड़ कर अपने बास के सिगार का इन्तिजाम कर रहे होते हैं।

ख़ैर मैनेजर की चार बातें और नौ से पांच को आठ सात बनाने के बाद दिन ख़त्म हुआ और हम निकल पड़े उस एक कमरे के छोटे से पी.जी. की तरफ जिस को हम ने इस अंजान शहर में अपना घर बनाया है।

सच कहूं तो काम लम्बा खिंचना इतना बुरा नहीं लगता है जितना इस कमरे में अकेले रहना इसलिये मैं ने ये उसूल बनाया है कि रोज एक लम्बी सैर पर जायेंगे क्योंकि इस अंजान शहर में मुझको और कुछ अच्छा लगे या न लगे मगर रातें। वो तो हर जगह की हसीन होती ही हैं ना और फिर ये समन्दर से मिला हुआ शहर अपनी ठंड़ी हवाओं से मेरी पूरे दिन की तकान और शिकायतें दूर करके मुझे मना ही लेता है। रोज का आसान–सा मामूल था सीधी सड़क पर चलते जाना है और फिर उसी ढाबे पर वही आर्डर देना।

बाहर निकला तो देखा कि आज रात अपना सियाह काला चोगा सर से पैर तक ओढ़े हुए थी और वो हवायें जो मुझ को अक्सर मना लिया करती थीं वो जरा सख़्त और सर्द हो गयी थीं एक बार तो सोचा कि आज कमरे में ही ठहरते हैं मगर खाली कमरा अकेलेपन की जो बर्फीली हवायें लाता है उनके मुकाबले बाहर का मौसम ख़ासा बेहतर लग रहा था सो जैकेट डाल कर निकल ही गये।

यूं तो इस बस की भीड़ में नजरें सामने खड़े शख़्स से आगे नहीं देख पाती हैं फिर भी अगर कभी सरसरी निगाह से देखा जाये तो लगेगा कि इस बस पर एक ही शख़्स के कई हमशक्ल भरे हुए हैं। वही हलके रंग की शर्ट कहीं नीली तो कहीं सफेद किसी ने खुद को बहुत अलग दिखाना चाहा तो गुलाबी शर्ट और पैंट तो सब की वही एक काली या भूरी सभी के गाल पीछे गले में आई डी कार्ड का पट्टा और चेहरे पर आने वाले दिन की संजीदगी सब निकल पड़े हैं कहीं अपना शहर कहीं अपना खानदान तो कहीं अपना ख्वाब छोड़ कर उसी घर और खानदान और ख़्वाब का पहिया आगे बढ़ाने के लिये।

मेरे कुछ ही आगे सड़क का मोड़ दाहिनी तरफ मुड़ता था और अन्दर काफी पेड़ नजर आ रहे थे पेड़ों की छाओं के नीचे से निकलूंगा तो हवा इतनी तेज नहीं लगेगी और फिर आगे जाकर वापस सड़क का रास्ता जरूर होगा ये सोच कर मैं उस तरफ मुड़ गया। चलिये सोच तो सही थी अन्दर मकानो और पेड़ों की वजह से हवा की तेजी कम हो गयी थी नज़र घुमा कर देखा तो ये एक रिहायशी सोसायटी लग रही थी। ज्यादातर घर एक ही तरह के बने थे दोमंजिला और बाहर एक छोटा सा बागीचा।

कितना अच्छा रहा होगा यहां बड़ा होना, मैंने अपने दिल ही दिल में सोचा। कितना अच्छा लगता होगा इस ऊपर के कमरे की खिड़की से रात को बाहर देखना।

मुझे अपना एक पुराना ख्वाब याद आ गया कि कैसे बचपन में मेरी ये ख्वाहिश हुआ करती थी कि काश हमारा भी दो मंजिला मकान होता और मेरे कमरे की खिड़की से चांद दिखाई देता। और कैसे मैं उसे सारी रात देखते–देखते सो जाता मगर हमारा तो दो कमरों का छोटा–सा आशियाना था जहां बिजली का बिल बचाने को अक्सर हम सब एक ही कमरे में सो जाते थे ऊपर मसहरी पर मां और बाबू और नीचे हम दो भाई।

ऐसा नहीं है कि आगे चल कर हमारे हालात बेहतर नहीं हुए मगर कुछ ख्वाहिशों का अपना एक वक्त होता है इस लुत्फ का तसव्वुर जो इस दो मंजिला खिड़की से झांकने का मुझे उस उम्र में होता था वो अब दुनिया की सब से ऊंची इमारत की खिड़की से नहीं हासिल हो सकला और न ही वो महरूमी जो मेरे कच्चे दिल में तब बैठ गयी थी वो अब जा सकती है। वो वक्त के साथ हल्की जरूर पड़ सकती है मगर मिट नहीं सकती।

मुन्ना भाई के ढाबे की सब से उमदा बात ये है कि वो

बहुत ही आम सा है न ज्यादा जगमग और न ही अंधेरा, न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा, खाना भी बिलकुल आम सा मिलता है शायद इसीलिये मुझे यहां घर का सा एहसास होता है। यूं तो मुन्ना भाई अपनी सफेद गद्दी पर अपनी आधी आंखें बन्द किये पड़े रहते हैं क्योंकि ढाबा अमूमन खाली ही रहता है मगर कभी–कभी कुछ भूली बिसरी बसें पीछे के ढाबों को छोड़ कर यहां रूक जाती हैं और तब यूं लगता है मानो मुन्ना भाई के साथ पूरा ढाबा भी जाग गया हो।

यूं तो मुझे इस बिन बुलाई बारात से कोई ऐतराज नहीं है लेकिन आज मैं यहां जेह्न में एक सवाल लेकर आया हूं पिछले कुछ महीनों से सोच रहा हूं कि अब घर पैसे भेजने के बाद हाथ में कुछ नहीं बचता है। कब तक यूं ही अकेले पी जी बदल कर रहूं गा। उम्र बढ़ती जा रही है अब अपने बारे में सोचना कोई गलत बात तो है नहीं कब तक पी जी बदलता रहूंगा अकेले खाना खाता रहूंगा अब कोई साथी हो तो जिन्दगी बेहतर हो जाये गी मगर इस से पहले एक छोटा सा ठिकाना होना भी तो जरूरी है मैं अपने ख़यालों में गोते लगाते हुए सामने पड़ी नैपकिन उठा ली।

अठारह हजार में से आठ हजार घर भेजता हूं बचे दस हजार अब पी जी और खाना हटा कर बचते हैं पांच हजार, अब अगर घर आठ हजार की जगह छः हजार भेजने लगूं तो भी काम चल ही जायेगा और उन पैसों को बचा कर इस साल के आख़िर तक पगड़ी के पैसे तो इकटठा हो ही जायेंगे किराये का अपना मकान हो जाए तब अम्मा जो हर बार शादी का ज़िक्र करती है उन को मना नहीं करूँगा।

अठारह हजार में से आठ हजार घर भेजता हूं बचे दस हजार अब पी जी और खाना हटा कर बचते हैं पांच हजार, अब अगर घर आठ हजार की जगह छः हजार भेजने लगूं तो भी काम चल ही जायेगा और उन पैसों को बचा कर इस साल के आख़िर तक पगड़ी के पैसे तो इकटठा हो ही जायेंगे किराये का अपना मकान हो जाए तब अम्मा जो हर बार भ्रादी का ज़िक्र करती है उन को मना नहीं करूँगा।

अपने जोड़ घटाओ पर खुश होकर मैंने नैपकिन जेब में रख ली और राहत की एक सांस ली। बस वाली जमाअत अभी वहीं थी मेरे सामने वाली चारपाई पर दो बच्चे अपनी मां के सामने बैठे थे। छोटी बहन दूर के नजारों में गुम अपना पानी का गिलास मुंह से लगाये बैठी थी और बड़ा भाई बहन का गिलास देख रहा था। एकदम से भाई ने गिलास के नीचे अपना हाथ दे मारा और पूरा पानी बच्ची के ऊपर गिर गया बच्ची पहले तो चौंक गयी फिर अपने भाई को जोर–जोर से हंसता देख कर उसे भी हंसी आ गई वो अपनी हंसी छुपाये ऊपर से झूठा गुस्सा ज़ाहिर करते हुऐ भाई को डांटने लगी।

मेरे चेहरे पर बच्चों की शरारत को देख कर एक छोटी सी मुस्कुराहट आ गयी इतने में मेरी नज़र बच्चों की मां पर गयी उन के चेहरे की शिकनें उन की परेशानियां साफ जाहिर कर रही थीं। उन्होंने अपने बेटे का कान पकड़ा और उसे बहन की प्लेट दिखाने लगीं। बच्ची की प्लेट पर पानी गिर गया था। सालन रोटी सब में पानी–पानी ही नज़र आ रहा था उन्होंने पहले अपने बेटे को डांटा और फिर बिना किसी हिचकिचाहट के अपनी प्लेट बेटी की प्लेट से बदल ली, उन का गर्म–गर्म सालन और गर्म रोटी अब बेटी के सामने रखी थी। इससे पहले कि बच्चे कुछ भी कहते उन्होंने पानी वाला सालन गीली रोटी से खाना शुरू कर दिया।

मैं काफी देर तक उन लोगों को देखता रहा मुझे याद आया कि हमारे खराब दिनों में जब अब्बू की तनख़्वाह ताख़ीर से आती थी तो मां कहती थी कि उन्हें भूख नहीं लगती पेट जो खराब रहता है ना और हम दोनो भाइयों को दो–दो रोटी खिला देती थीं। मुझे ये बात बहुत बाद में समझ में आई कि भूख न लगने की अस्ल वजह क्या थी।

मैंने अपनी जेब से नेपकिन निकाल कर देखी घर भेजने वाले छः हजार रूपये पर मेरी नज़र गयी छोटू की पढ़ाई का खर्च बढ़ गया होगा और बाबू की कमाई और भी घट गयी है जो घर तनख़्वाह में ठीक से नहीं चलता था पेंशन में कैसे चल रहा होगा। मेरी कौन सी उम्र निकली जा रही है मर्दों की तो कोई उम्र नहीं होती है शादी की। कभी भी हो सकती है एक बार छोटू भी नौकरी में आ जाये तब अपने बारे में सोचूंगा।

खुद को ये सब समझाते हुए मैंने छः हजार को काट कर फिर आठ हजार कर दिया। मैंने मुन्ना भाई को खाने के पैसे दिये और निकल गया उसी सड़क पर, कुछ देर बाद वही सोसायटी वाला मोड़ आ गया मैं ठहरा और कुछ देर तक उस मोड़ को देखता रहा मगर इस मरतबा नजरें झुकाकर सीधे घर की राह पकड़ ली।

•

पता : 105/591, हाफिजल हलीम कम्पाउण्ड, बहन्ना पुरवा, चमनगंज, कानपुर–208001
मो. : 6386179990

गुमसुम

❑ डॉ. अलका अस्थाना ''अमृतमयी''

श्रद्धा के सर में दर्द था। मौसम भी करवटें ले रहा था। आसमान में बादल छाये थे कल शाम को भी वह देर से घर आ पाई थी। मैडम ने रोक लिया था। उसके पांव में जो थिरकन, जो रिदम था, देखते नहीं बनता था। पर, घर में उसकी बात को समझने वाला कोई नहीं था। मां भी उसका कोई ध्यान नहीं रखती थीं। उन्हें तो बस हमेशा अपने चिंटू की चिन्ता लगी रहती थी। श्रद्धा के कमरे में अभी भी रोशनी नहीं थी, दो दिन से कमरे का बल्ब फ्यूज़ हो गया था जब मम्मी से कहती, मम्मी टाल देती थीं। एऽऽओऽऽ –कहतीं। पापा कितनी मेहनत करें उन्हें ओवर टाइम करना पड़ता है। तब भी घर के खर्चे पूरे नहीं हो पाते और तुम्हें अपनी पड़ी रहती है। जब देखो तब खर्चा ही खर्चा। खर्चे के अलावा भी तुम्हें और कोई काम सूझता है। दिन भर इधर–उधर, न काम, न धाम। देखो, घर में, कितना काम पड़ा है। मां ने अभी कल ही तो अपने चिंटू को जीन्स लाकर दी थी।

बाहर की ओर झांकते हुए, अरे! ये बारिश। धीरे–धीरे बारिश कम हुई। बारिश के साथ ही, श्रद्धा फिर अपने दैनिक कार्यों को निपटा कर बाहर प्रैक्टिस के लिए निकल पड़ी थी। मां ऽ मांऽ मैं जा रही हूं। अरे कहां? आज बारिश की वज़ह से उसे ऑटो मिलने में भी तक़लीफ हो रही थी।

एक फकीर गाना गाता हुआ ....रंगीन दुनिया देख सकने में सक्षम नहीं था। (नेत्रहीन) साथ में एक लड़की उनके हाथ को थामें थी। वह गुनगुना रहा था।

पागल–पागल दुनिया है, बंजारे जीवन एक खेला
चलो–चलो जीवन की नदिया सांसों का पनघट मेला।।

श्रद्धा के कानों में यह आवाज जैसे ही जाती हैं। उसे अच्छा लगता है। अरे, बाबा। रूको! एक टॉफी देती है।

वो उसे प्रतिदिन एक टॉफी देती थी। और वो बाबा कहते –अरि बच्चा खूब

आगे बढ़ेगी। एक राजकुमार आयेगा, घोड़े से ले जायेगा, वो खुश होकर शर्मा जाया करती है।

वह प्रैक्टिस के लिए सेन्टर पहुंच जाती है। अरे श्रद्धा तुम्हें इतनी देर कैसे हो गयी। सर झुकाकर खड़ी हो जाती है। सभी बच्चे अभ्यास में लगे हैं। देर होने के कारण, दबे होठों से चली जाती है और पांव में घुघरू बांध लेती है।

आओ, रे। श्याम रंग डालो गाने के धुन बजने लगती है उसके भाव और गहरे तीखे प्रभाव मन मोहनेवाला वो नृत्य, वो थिरकन ...

शाबाश ! अच्छा परफार्मेन्स।

तभी, फोन की घंटी। मां का फोन, तुम कहां हो? मां मैं स्काउट स्प्रिट पर हूं। जल्दी आओ पापा आ गये हैं। जी मां बस आयी।

मैम कहती हैं– बहुत अच्छा अब सिर्फ दो ही दिन शेष रहे गये हैं। उसके बाद मंचाअभ्यास में केवल एक दिन लगेगा जी मैम 2 घंटे अभ्यास करने के बाद वो वहां से बैग टांगकर निकलती है।

घर पहुंचती है। श्रद्धा तुम कहां रहती हो, पापा ने कहा–

पापा मैं स्कूल के डांस प्रैक्टिस में थी। वहीं से आ रही हूं। डांस–तुम सिर्फ नाचना–गाना लगाये रखो, न पढ़ना–न लिखना। तुम्हारी मां ने बताया–तुम बहुत ढीठ हो गयी हो। पापा ने उसकी तरफ देखकर कहा–

मां का कोई लिहाज नहीं करती न उनकी बात मानती। उसके मन में एक मंथन चल रहा था कि पापा से पैसे मांगू। कैसे मांगू ? परसों ही मेरा ड्रेस परफार्मेंस है। गुमसुम सी हो जाती है और अपने कमरे की ओर बढ़ती है कहां चली तुम। यहीं खड़ी रहो, आज! तुम्हें कमरे में भी नहीं जाना है आज तुम्हें खाना भी नहीं दिया जायेगा। तुम डांस तो छोड़ोगी नहीं कभी इधर–कभी उधर सॉरी पापा गलती हो गयी एक थप्पड़ मारते हैं।

चलो जाओ! अपने कमरे में ..

जाती है। कमरे में अंधेरा और उसका बैग बिखरा हुआ फर्श पर पड़ा था । बुक्स के टुकड़े–टुकड़े करके बिखरे थे। चिंटू ये तुमने क्या किया दीदी मैं अबुल कलाम का चित्र ढूँढ रहा था और इसलिए मैंने कटिंग कर डाली ओहो मां को पुकारती है। मॉऽ माऽ मां चिंटू ने मेरी बुक कटिंग कर डाली है। मां कहती है कि तू क्यों चिंटू से लड़ती है। तू लड़की है। तुझे दूसरे घर जाना है अपनी ज़ुबान को काबू रख। इतना खाती है तुमने रात में सन्तरें निकाल कर खाए थे न, नहीं मां नहीं। पढ़ेगी नहीं तो स्कूल से तेरा नाम कटवा दूंगी। चिंटू तो मेरे घर का चराग है। सुबह होती है।

वैसे, श्रद्धा 14 वर्ष की हो गयी थी लेकिन बहुत ही समझदार थी उसे हर काम को सीखना अच्छा लगता था। स्कूल की सभी मैडम उससे बहुत प्यार करती थीं लेकिन इन सबके के बावजूद वो सहमी रहती थी। जब देखो वो पार्क में जाकर बैठ जाती या कभी कहीं भी। इतना भोला सा चेहरा पर रंग सांवला नाक नक्श बड़े ही तीखे जैसे अपने व्यवहार से वो सभी का मन जीत लेने में सफल थी। लाडली और शॉर्प माइंड होने के कारण, टीचर उससे अच्छा व्यवहार करती थीं। वो और बच्चों के लिए एक उदाहरण थी।

कल डांस के परफार्मेंस का दिन था। अपनी गुल्लक को फोड़कर उसमें से पैसे निकालती है उसकी गुल्लक में करीब 848 रू. ही निकले थे। ख़ैर उसकी ड्रेस रू. 550 की थी उसने अपने ड्रेस के पैसे जमा कर दिये ।

नयी ताज़ी सुबह चिड़ियों की चहचहाहट और आज उसका स्टेज शो था। वो बाथरूम में भी गुनगुना रही थी। उमड़ती–घुमड़ती रूनझुन सी आवाज़। उसके मन को एक सुन्दर एहसास कराती सी। घर से दो बजे निकलना था।

मम्मी का पारा सुबह से ही 100 डिग्री पर था मां आपको आना है। हां महारानी पहले जाओ और चिंटू के लिए नाश्ता बनाओ। वो जाती है और चिंटू के लिए नाश्ता बनाती है और अपने प्रोग्राम के लिए निकलती है।

स्टेज पर मुख्य भूमिका में। वह बच्ची सभी के लिए थिरकते पैरों से मिसाल कायम करती है। दर्शकों का मन मोह लेने वाली, श्रद्धा सभी के हृदय की धड़कन पैदा करती है। क्या भाव, प्रोगाम चल ही रहा था कि घर से फोन आता है कि श्रद्धा की मां का एक्सीडेंट हो गया उसके कानों का पड़ा स्वर मां की ओर लालायित हो उठता है थिरकते पैर शांत मुद्रा में हो जाते हैं। उसको स्कूल की गाड़ी से हॉस्पिटल पहुंचाया जाता है। पापा टूर पर श्रद्धा अकेले ही सब स्थितियों को हैंडिल करती है और डॉक्टर से ऑपरेशन के लिए कहती है। एक मां की सांसें दूसरे पापा भी शहर में नहीं।

मां का बहता ख़ून। इशारे का संकेत...अपनी बेटी को इस प्रकार परेशान देख उसकी आंखों में आंसू आ जाते हैं और उन्हें ऑपरेशन के लिए ओ.टी. में ले जाया जाता है।

मां, ऑपरेशन थिएटर में जाता हुआ देखकर श्रद्धा की कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे, क्या न करें, वह परेशान हो रही थी ।

लगभग दो घंटे ऑपरेशन चलता है। डॉक्टर्स

अनबुझे शब्दों में कह रहे थे। देखो, क्या होता है और क्या नहीं उसके मन में कुछ सवाल उठ खड़े हो रहे थे। थोड़ी देर तक मां को एकटकी लगाकर देख रही थी। पापा आ गये थे। वो बेहद परेशान थे। मम्मी की इस तरह की हालत देखकर। वो श्रद्धा, जिसके बारे में मां अक्सर कुछ न कुछ कहती रहती थी। इस समय की जो स्थितियां थीं वो देखते नहीं बन रहीं थी। चिंटू की वही आदत। बात को न मानना। पापा के मना करने पर भी वो बहुत शैतानी करता था। अपना सामान इधर–उधर डालना। हर बात की जिद करना। आज सुबह ही उसने बाथरूम का नल खुला छोड़ दिया था जिससे सारी टंकी का पानी बह गया और पानी न होने से बहुत दिक्कत उठानी पड़ी थी। पापा भी उसको कुछ नहीं कहते थे। आज सुबह से किसी ने भी कुछ नहीं खाया था। मेरे पूछने पर भी पापा ने कहा नहीं खाना है। मां को होश आ चुका था। नर्स उनके इंजेक्शन लगा रही थी। मुझे मां का दर्द देखा नहीं जा रहा। मैं सिसक–सिसक कर रो पड़ी थी दिन बीतते गये। मां अस्पताल से घर आ चुकी थी। श्रद्धा पूरा ख़याल रखती थी। उन्हें खाना खिलाना, दवा देना आदि सब कुछ। लेकिन, मां छोटी–छोटी बात में भी, हमसे नाराज हो जातीं। कहतीं– तू! सुधरेगी नहीं। तेरी ही वजह से हमारा एक्सीडेंट हुआ है। तू न होती तो, हमें इतनी चिंता न होती। तभी घंटी की आवाज़। कौन आया होगा? आख़िर, पोस्टमैन आइये चिट्ठी ले लीजिये–किसकी है। श्रद्धा बाहर जाती है, मां देखो! तो ज़रा मेरा महाराष्ट्र से पत्र आया है। सुरमाधुरी की तरफ से हमें प्रोग्राम के लिए बुलाया गया है कब का कार्यक्रम है मुझे दिखाओ–मां कहती है श्रद्धा ने कहा मां ये देखिये प्लेन के टिकट भी रखे हैं प्लेन से जाना होगा। बड़ा शानदार कार्यक्रम होगा। यदि इस प्रतियोगिता में पास कर लिया तो हमें 'बेस्ट इण्डिया चाइल्ड एवार्ड' दिया जायेगा।

मां, घर में बिस्तर पर थी, श्रद्धा के ऊपर घर का भार वो कैसे क्या करती। प्रतिभा की धनी। कलाकार का हृदय अलग ही होता है। संवेदनशील हर एक को देखकर द्रवित हो जाना मोहल्ले से लेकर घर तक के लोगों की फ़िक्र करना।

कक्कू चाचा के साथ बागवानी में जाकर हाथ बंटाना, उसे तो काम करना अच्छा लगता था, न। इसलिए वो सबके साथ ही काम करती थी। उसने जाने का मौका भी खो दिया। जब भी वह कोई पुरस्कार जीत कर लाती हमेशा उसको निरूत्साहित किया जाता। कभी उसके रंग को लेकर, कभी ढंग को लेकर। वो सब कुछ समझने रहने लगी थीं।

मां अब ठीक हो गयी। घर में इधर से उधर काम–काज और साथ में बीच–बीच में डांट–डपटकर चली जाती। चलो ये करो वो करो।

सब कुछ ठीक हो गया था। चिंटू की तो, अब बाहर से भी शिकायत होने लगी थी।

चाहें सासें रूक जायें, हम सोये न सोयें हम किसी का इन्तज़ार करे या न करें सेम की बेल की तरह लड़कियां बड़ी होती जाती है। श्रद्धा भी अब 16 की हो गयी थी। पर निपुणता में सबसे अव्वल थी।

आज की सुबह, श्रद्धा खिड़की के पास बैठी थी। पता नहीं, उसे ऐसा लग रहा था कि उसका सर घूम रहा था। उसके हाथ कांप रहे थे और होंठ काम नहीं कर रहे थे। वह किसी से बात करने में सक्षम नहीं थी। कई बार चिंटू आया और उसने कुछ कहा–दीदी क्या कर रही हो, पर उसका कोई जवाब नहीं था। वह कुछ बोल नहीं रही थी। पर बार–बार यह कह रही थी कि मुझे कुछ हो रहा है। मुझे कुछ समझ में नही आ रहा है। हमेशा गंभीर और सबसे हंसी खिलाती श्रद्धा के कुछ समझ नहीं आ रहा था।

दोपहर का समय पापा उसे डॉक्टर के पास ले जाते हैं श्रद्धा के चेकअप के लिए डॉक्टर कहते हैं। पापा के हाथ में टेस्टिंग के पर्चे। श्रद्धा अब गुमसुम हो गयी थीं। स्कूल से और डांस टीचर सभी दोस्तों के फोन आते पर श्रद्धा यही कहती, मैं ठीक हो जाऊँगी तब बात करूंगी अब नहीं टेस्टिंग की रिपोर्ट आती है। श्रद्धा के ब्लड ट्यूमर निकला था । पापा ने कुछ नहीं बताया। मां भी कुछ नहीं कहती, तो उसे समझ में नहीं आता ये क्या हो रहा है। डॉक्टर के मुताबिक श्रद्धा बस थोड़े दिन की ही मेहमान रह गयी है। डॉक्टर ने कहा उसे खुश रखिये। पापा हंसाने की कोशिश करते पर वो चपल नेत्र, थिरकते पैर, सब जैसे थम सा गया हो, शान्त सा। श्रद्धा के कमरे से घुँघरू की आवाज आती थी वो वह दवाओं के लम्बे–लम्बे ढेर में परिवर्तित हो गयी थी। धीरे–धीरे श्रद्धा की हालत बिगड़ती गयी थी। उसने पिछले ही दिनों में एक अवार्ड भी जीता था। पापा के पास पूछताछ के लिए फोन आते। पापा की आंखें नम थीं वो तो अब किसी को पहचानने में भी सक्षम न थी। उल्टा–सीधा बोलती सब कुछ भूल गयी थी। पापा अपने कमरे में थे। अभी ही श्रद्धा से बातें की थीं बेटा अब सब ठीक होगा। गुमसुम सी श्रद्धा अनसुनी आवाज़ में आकाश में विलीन हो गयी थी.....!

•

पता : 306/24 आलम नगर रोड,
बावली चौकी, लखनऊ–226017
मो. : 8934884441

विनीता अस्थाना की कविताएँ

विनीता अस्थाना

1. मैं डर जाती हूँ।

मैं डर जाती हूँ।
कुछ हाथ से छूट जाय
या टकरा के गिर जाय
चम्मच गिरे या इंसान नजर से
मैं डर जाती हूँ।

किसी को धक्का लगा हो या ठेस
मुझसे गिलास टूटा हो या गुरूर किसी का
मैं डर जाती हूँ !

मुझे सहेजने की आदत है
टूटी चीजें जोड़ देती हूँ
अक्सर यूँ ही माफी मांग लेती हूँ
क्योंकि मैं डरती हूँ

सामान हो या रिश्ते
मैं खोना नहीं चाहती
तोड़ना, छोड़ना, आगे बढ़ना
मुझे नहीं आता ये सब
आख़िरी हद तक कोशिश करती हूँ
क्योंकि मैं डरती हूँ।

कमजोर नहीं हूँ, इंसान हूँ
उससे भी ज्यादा, औरत हूँ
मुझे सहेजने की आदत है
इसलिए मैं खोने से डरती हूँ
हाँ ! मैं डरती हूँ
कि जिस दिन ये डर ख़त्म हो जायेगा
तुम मुझे खो दोगे।

2. वो कोई और है।

लोग कहते हैं सतरंगी था उसकी आँखों का रंग
उसके सपनों की ही तरह
उसकी आँखों से चाँद गुलाबी था,
हवा चमकीली

सुनहरी रेत की चादरों से बने उसके हिस्से के बादल

तब बरसते थे

जब वो ग़ज़ल गुनगुनाता था

अजीब था वो

ख़ामोशियाँ सुनता था

तितलियाँ ढूँढता था

सूखे फूलों से बतियाता था

जुगनू इकट्ठे करता था

टूटे रंगीन कांच से

देखता था धूप के बदलते रंग

जेब में भर रखे थे उसने प्यार के ढंग

काँटों के संग भी मुस्कुराता था, ठहाके लगाता था

सुना है कुछ साल पहले

मर गया वो

आजकल 6.30 की बस से अगले चौराहे पर जो उतरता है..

वो कोई और है।

3. औरतें!

औरतें,

घर में रखी बासी रोटी से स्वादिष्ट कसार बना देती हैं,

पुराने कपड़ों से दरी बुन देती हैं।

उन्हें आता है,

रफू करके हर दरार को भर देना..

उधड़े स्वेटर पर फूल काढ़ देना..

मोजों से गुड़िया बना के बच्चे बहला देना..

उन्हें आता है हर रिश्ते में जान फूंकना

प्यार से, दुलार से तो कभी मनुहार से !

मकान को घर बनाना,

परिवार को संवारना,

सब आता है उसे,

नहीं आता तो बस हार मानना।

पढ़ने वाली, पढ़ाने वाली,

अनपढ़ हो या कमाऊ औरत, औरत होती है

और वो औरत अगर किसी को छोड़ कर आगे बढ़ जाए,

तो मान लेना चाहिये कि हर मुमकिन कोशिश हो चुकी है

अब रिश्ते में ना जान बची होगी

ना गुंजाइश !

•

पता : 506, आई.आई.टी., हौजखास,
नई दिल्ली–110016
मो. : 9910165466

संध्या रियाज़ की कविता

संध्या रियाज

1. विधवा

मत छीनों उन चूड़ियों को
जिन्हें सुहाग की निशानी मान
पहनाया था उसने
देखो बिंदिया के हटते ही
माथे की सिलवटों ने
उसका नसीब कह डाला
जीवन अधूरा है इसका
जब से वो छिना है इससे

सुनो रहने दो उसके पास
उसकी यादों की सौगात
उसकी एक–एक छाप
जो छपी है उसके शरीर के
अलग–अलग हिस्सों में
देखी और अनदेखी
क्या दिल से भी खरोंच लोगे
क्या इतना भी हक न दोगे

माथे पे बिंदिया का दाग
उस दाग का अहसास
उतारी गई चूड़ियों के
टूटे नुकीले कांच
कांच से चुभे खून के दाग
बेबस आंखों में छिपे
सालों साल के जज़्बात
कैसे सब छीन पाओगे

जीना हक़ है उसका जीने दो
तुम क्या जानो जो मर चुका
वो तो अब भी
जीता है उसके साथ
रस्मों से परे
विधियों को भेद कर
देखता है उसे अब भी
बिंदी चूड़ी रंगों के संग
तुम ऐसी सुहागन पर
विधवा का रंग कैसे चढ़ाओगे
एक सुहागन को विधवा कैसे बनाओगे।

•

पता : यमुना नगर, वेलफेयर सोसायटी,
डी–1/5, 603, अंधेरी वेस्ट, मुबंई–53
मो. : 9821893069

डॉ. रीतादास राम की कविताएँ

डॉ. रीतादास राम

1. फिर भी कवि जिएंगे

कइयों पर भारी पड़ती
कविताएँ ख़ारिज होंगी

जिसने कहना चाहा
सच को कोरा–कोरा

अत्याचार को घूरा नंगी आँखों से
दुःख को कहा शब्दों में साफ

सामूहिक आक्रोश की व्याख्या की
जबरदस्त दांवपेंच के तार परखे
अतृप्ति को किया सरेआम

समझाया कि

अज्ञानता रोक रही है रास्ता
जीवन से ज्ञान का तारतम्य हो रहा
है अवरुद्ध

मकसद है शिरोधार्य
जीवन जीना तृप्ति नहीं प्यास नहीं
सत्ता का परचम लहराना है

सिर्फ इसीलिए
शब्दों को पहनाई जाएंगी हथकड़ियाँ
वाक्य गुलाम बनाए जाएँगें
अर्थों का चीरहरण हो संभवतः
फिर भी कवि जीएंगे

अक्षर और शब्दाकृतियों का साथ न
छोड़, अंततः।

2. इच्छाएं

इच्छायें नहीं मरतीं
ना मुरझाती हैं
सुप्तावस्था में भी जिंदा होती है

पके फसलों–सी लद
झुकी जाती हैं
मन के देह पर

खुशबू–सी
छा जाती है मस्तिष्क में

जिद्द मचाती है अल्हड़–सी
नजरों को धकियाते

फेर लेती है मुँह
देख विचारों की सादगी

बरगलाती है
फुसलाती है
बहकाती है हठात्

विचार दृष्टि में जमाकर आसन
इच्छाएं करवा लेती हैं मनमानी

जब भी होती है पैदा

इच्छाएँ
बलबती हुए बिना नहीं मानती।

3. स्त्रियों के लिए बनी नीतियाँ

पुरुष सत्तात्मक नीतियां
स्त्रियों को
मेहनताने का अधिकार नहीं देती
चौबीसों घंटे घर में
बेगार आश्रित रखती है

आडंबरी मान सम्मान युक्त
घरेलू गुलाम
बनाने की साजिश हो चाहे

इस गुलामी से
खुद को आज़ाद करना या होना
स्त्री की
अपनी नैतिकता पर निर्भर है

शादी जहाँ समाज में
स्त्री को पार्टनर के नाम पर अकेला कर देती है
वहीं जीवन की लड़ाई उसे
अकेले लड़नी होती है

रिश्ते हैं रिश्तेदार हैं
माँ बाप भाई बहन चाची मौसी
पति ससुर सास देवर ननंद भौजाई

चाहे हो सो हो .... उसका अपना कोई नहीं होता।

4. पत्नी और प्रेमिका

अच्छे लगे
पत्नी बच्चों के संग
तस्वीर में हँसते हुए तुम

अच्छी लगी वो तस्वीर जिसमें
अपने पूरे परिवार के साथ हो मौजूद
पत्नी बेटी बेटा माता–पिता

पत्नी की जगह पत्नी है मौजूद देखकर खुशी हुई
पत्नी है वहाँ जहाँ उसे होना चाहिए
पत्नी की जगह प्रेमिका नहीं होनी चाहिए

पत्नी की जगह प्रेमिका अच्छी नहीं लगती
यह वह सच है जो दुःख देता है
प्रेमिका की अपनी अलग पहचान होती ही है

प्रेमिका वहाँ हो जहाँ उसे होना चाहिए
घरेलू तस्वीरों में प्रेमिका का दख़ल सभी को चुभता है
समाज की यह रीत है जिसे तोड़ना दुःखता है

प्रेमिका का एक अलहदा स्थान है
जो उसे प्रेम ने दिया है

पूरे पारिवारिक परिदृश्य के बावजूद प्रेमिका ने प्रेमिका का स्थान पाया,
यह एक ऐसा सच है जो अपने पूरे कड़वेपन के साथ भदेस सुरक्षित ....

जीवन के साथ उसका अपना है।

5. जंगल और इंसान

पूरी कठोरता के बावजूद
पहाड़ हरे भरे थे
आकर्षण की छटा लिए

जंगली जानवरों
और बेतरतीब पेड़–पौधों

के साथ

इंसानों ने बीच इन्हीं के
चाहा बसना

उगाते हुए हरे–भरे खेत
सीख लिया
पूरी चुनौतियों के साथ रहना जिंदा।

6. दर्द

मार्गदर्शक बना
ध्रुव तारे–सा, दर्द
बीहड़ जीवन का हमसफर है

शब्दों और भाव से हो स्पंदित
जोड़ते हुए तारतम्य
निःशब्द सच्चाई से बनाता रहा है राह

मैंने मिट्टी में काटे दिन
और आकाश की हो गई

गैलेक्सी से सराबोर दुनिया हर बार सामने से गुजरती रही

बावजूद इसके
अंधेरे के जुगनुओं की तलाश में खोना जरूरी क्रिया रही
जिसने शिद्दत से जीना सिखाया
देखना चहुंओर

पूरे एहतियात से
हर कोशिश की सारी हदें पूरी की

खुदरा समय जीवन से निकाला ज़र्रा–ज़र्रा हिस्से किए
लक्ष्य बना चलती रही दौड़ती रही मौत की तरफ

कहते हैं कुछ दर्द जीना सिखाते हैं,
मैंने मरने का स्वाद भी चखा है जीते जी।

7. न धीरज है, न दहशत

उतार भी लो ना
नजरों से आंच
कहीं झुलस ही न जाऊं

मीलों दूरी के बावजूद
बेहिसाब पहुंचा देते हो स्पर्श
धड़कने दो हरा जाती है

न होते हुए भी पास
तुम्हारे होने का एहसास
गजब बेखुदी है

जो मिलो,
कहीं मर ही न जाऊं

अबकी,
मुल्तवी कर देते हैं मुलाकात

के लगता है डर

न धीरज है
न दहशत है।

•

पता : 34/603, एच.पी. नगर पूर्व,
वासीनाका, चेंबूर, मुंबई
मो. : 9619209272

समरपाल सिंह की दो कविताएँ

समरपाल सिंह

1. स्मृति

अधखिला महकता मेरा मधुवन
समावेश ऋतुराज का यौवन
साल रही उर में एक तड़पन
छोड़ गयी जीवन में सिसकन।
संग प्रवासी निश्च्छल बचपन
फाग बसन्त में खूब खेलती
बार–बार आलिंगन करके
व्यथित हृदय के घाव सहलाती।
पुनः याद धुँधली–सी स्मृति
वात्सल्य की निश्च्छल क्रीड़ा
प्रेमांकुर से पनपी पीड़ा
झुका गई स्थूल का रोड़ा।
दो सुमन लिए अपने आँचल में
निर्जनता का अवसान कराती
तन इठलाकर मन बहलाकर
मधुर भाव जीवन के भरती।
पलभर का संयोग दे गया
वियोग भरी एक अकथ कहानी
नीरसता में बैठ अकेले

'स्मृति' कैसे करूँ सुहानी
करूणा की धारा में बह गए
संचित सपने जीवन भर के
नीरवता निर्जनता रह गई
व्यंग्य संजोए सारे जग के।
कहने को मैं मूक नहीं हूँ
सुनने वाला कोई नहीं है
हँसने को बेपीर हजारों
पर कोई भी मीत नहीं है।
होता है अवसान सुखों का
प्रेमांकुर उद्‌भव से
नीरसता निर्जनता झेले
सहें उलाहने सबसे

2. उत्कंठा

कच्ची पगडंडी से चलकर
पीली सरसों के उपवन में
झरबेरी झुरमुट के पीछे
अधखिली कली यौवन की
चीर कलेजा निस्तब्ध तिमिरका
मयंक बना निष्ठुर प्रहरी है
मधुर मिलन की प्रतिपल आशा
उत्कंठा भरी श्वांस उस छवि की।
चेतनहीन हुआ तन–मन से
सहसा! पाँव रूके पल भर को
किंकर्तव्य–विमूढ़ शिला–सा
अरे! अजनबी क्यों देत दिलासा?
परछाई झुरमुट से बोली
प्रश्न गूढ़ है परे समझ से
अनजाने से मिला भरोसा
पुर्नमिलन की है अभिलाषा।
सोपान प्रथम है जीवन का
कुछ बोध नहीं उस पल का
संयोग क्षणिक है वियोग मर्म है
यही रहस्य जीवन का।
'शब्दहीन' संवाद प्रेम का
वियोग भरी सरगम गाता है
एकान्तवास में बैठ अकेले
सपनों के ताने बुनता है।
उठती लहरें सागर मन में
इठलाती कल–कल करती हैं
लेकर फिर भी करूण वेदना
उसके आँचल को भरती हैं।

•

पता : पिदौरा रोड,
मारहरा (एटा) 207401
मो. : 9456037283

अतीक अरहम की गजल

अतीक अरहम

हुस्न वालों की खुदा जाने ये फितरत क्यों है
वक्त–ए–वादा ही मुकर जाने की आदत क्यों है

आप ने साथ मिरा छोड़ा राह–ए–उल्फत में
आप को मुझ से मेरी जान शिकायत क्यों है

भूल कर दर्स मोहब्बत का मुरव्वत का यहाँ
आज इंसान को इंसान से नफरत क्यों है

और भी लोग हैं दुनिया में मोहब्बत के लिए
तुम को हम से ही मगर इतनी मोहब्बत क्यों है

तेरी महफिल में कई और भी हैं चेहरा जमाल
सिर्फ हम पर ही तेरी चश्म–ए–इनायत क्यों है

आप तो अपने हैं अपनों से झिझकना कैसा
ये तरद्दुद ये तकल्लुफ ये नज़ाकत क्यों है

कितने लोगों के उतर जाते हैं चेहरे अरहम
आप के शेरों में इस दर्ज़ा सदाक़त क्यों है

•

पता : 163/213–बी, अमीनाबाद,
लखनऊ
मो. : 6306900150

गुनाह बनती बेगुनाही की दीर्घा

❑ रेणुका अस्थाना

"गुनाह–बेगुनाह" मैत्रेयी पुष्पा का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें एक तरफ आज के पुलिस के अनैतिक कारनामों का काला चिट्ठा है तो दूसरी ओर ग्लोबल होते देश के वैविध्य सुख के पीछे की वह त्रासदी है जिसमें जर्जर–रूढ़ियों, सड़े–गले रस्मों–रिवाजों से बंधी लड़कियां आज भी कहीं 'डायन' शब्द अपने नंगे शरीर पर घाव सा चिपकाए गली–मुहल्ले में घुमायी जाती हैं तो कहीं पशुओं सी बेच दी जाती हैं। कहीं किसी अपराध को बिना किए अपने सर लेने को विवश हैं तो कहीं घरों में ही मार डाली जाती हैं। कहीं उन्हें बचपन में ही ब्याह दिया जाता है तो कहीं बिना जन्में ही टुकड़े–टुकड़े कर खुरच डाली जाती हैं। किताब, समाज की वह सच्चाई बताती है जिसमें लड़कियों के ऊपर सदियों से दमन करने की प्रवृति, आज भी अति सभ्य कहे जाने वाले समाज से लेकर निचले पायदान तक खुले रूप से न्याय व्यवस्था को खुली चुनौती देती जा रही हैं। यूँ अधिकांशतः ये घटनाएँ गाँव–कस्बों और मध्य से लेकर निम्न स्तर तक के परिवारों में ज्यादा पायी जाती हैं क्योंकि वहां शिक्षा और पैसे के अभाव के साथ ही वह अनगढ़ी परम्पराएँ भी जी रही हैं जिनका न कोई वैज्ञानिक महत्व है न सामाजिक मूल्य। हां अब इनके बीच इनको तोड़ने का एक प्रयास अवश्य हो रहा है। ये प्रयास कहीं परिवार के विरुद्ध है तो कहीं चाहे–अनचाहे परिवार की सहमति से।

इला और समीना, "गुनाह–बेगुनाह" की ये दो प्रमुख पात्र इस समाज में होते इसी प्रयास के वे चेहरे हैं जिनमें

इन रूढ़िगत परम्पराओं को तोड़ने का साहस भी है तो खुद के भीतर कुछ सही और अच्छा करने का विश्वास भी। अपने भीतर के इसी विश्वास को थामे इला पुलिस विभाग को चुनती है और समीना पत्रकारिता को, जो बाद में इला से प्रभावित होकर पुलिस विभाग में आ जाती है। दोनों का उद्देश्य एक ही है– जो अधिकार लड़कियों को नहीं मिल पाते अथवा जो झूठी सज़ा, अपना दोष न होने के बाद भी उन्हें काटनी पड़ती है, ये दोनों उन्हें इससे बचा सकें। इन दोनों के भीतर समय की इस धारा से युद्ध करने की चुनौती भी है और विश्वास भी। यूं बाद में दोनों को समझ में आता है कि जितना आसान वे सब समझती हैं उतना है नहीं। बल्कि घर और समाज की तरह यहाँ भी जाति–लिंग और धन के आधार पर लोगों के बीच दुराभाव है। उन्हें यह भी समझ में आ जाता है कि प्रशासन में बैठा हर अधिकारी कोई भी निर्णय लेने को स्वतंत्र नहीं है। वह अपने से ऊपर के अधिकारी की शक्ति से बंधा हुआ है। निर्णय लेने की सच्ची स्वतन्त्रता कहीं नहीं है। हर जगह अधिकांशतः चमचागिरी, जी हुजूरी और धन का बोलबाला है। इला के भीतर एक बेचौनी है, छटपटाहट है अपनी स्वतन्त्रता की : अपने लिए उस एक कोने की जो उसका नितांत अपना हो क्योंकि उसने अपने गाँव में, छोटी उम्र में ही लड़कियों की शादी होते देखा है। प्यार करने वालों ही हत्याएं सुनी हैं। बिना जन्में लड़कियों को मार देने की चर्चाएं सुनी हैं। गाँव घर की औरतों को दिन भर काम में जुते रहने के बाद भी उनके लिए बेड़नी और वेश्या जैसे सम्बोधन सुने हैं। इसलिए वह बाहर भाग जाना चाहती है इस परिवेश से। इस तरह के समाज से। वह भागकर "उड़ान सिरियल" की कविता चौधरी की तरह, इला चौधरी बनना चाहती है, जिसके भीतर गलत से लड़ने का एक जुनून था। झूठ से लड़ने की नैतिक शक्ति थी। वह नहीं चाहती किसी लड़के के साथ भागना, न ही शादी के फेरे लेकर छोटी उमर में पति के साथ रहना। उसके भीतर, एक युवा होती लड़की का अपना अलग–सा सपना है, अपना एक रोल मॉडल है जो हर युवा की अपनी सामान्य प्रकृति होती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने इला और समीना के माध्यम से बहुत ही सहज और सरल ढ़ंग से इन बातों को रखा है। लेखिका ने अपने इन दो पात्रों के माध्यम से गाँव और कस्बे का वह रूप दिखाया है जहां नए युग का सूरज नई टेक्नीक के सहारे धीरे–धीरे किरणें फैला रहा है। प्रकाश हो रहा है और लड़कियां आंख मलती अपनी देहरी डांक रही हैं।

यूं यह सच है कि सदियों कि परंपरा को काटना न तो किसी परिवार के लिए सरल है न किसी व्यक्ति के लिए, और लड़कियों के लिए तो असंभव–सा ही है पर यदि घर–परिवार उनके साथ खड़ा हो जाए तो असंभव के टुकड़े संभव में बदलने लगते हैं। इला, समय के इसी सूरज को पकड़ने के लिए अपनी बड़ी बहन के साथ मंडप में बैठने की जगह गाँव छोड़ने के लिए विवश होती है। वह निकल पड़ती है उस रास्ते जहां पुलिस कांस्टेबल की भर्ती हो रही है। फिर वह पीछे पलट कर नहीं देखती। इसी तरह समीना है जिसने अपने घर–समाज कि रूढ़िवादी परंपरा को तोड़कर, दिल्ली जैसे शहर में रह अपना कलेवर ही नहीं बदला बल्कि अपनी शिक्षा के बाद पहले पत्रकारिता की राह चुनी बाद में इला से प्रभावित होकर पुलिस विभाग को अपनाया। इन दो अलग–अलग सामाजिक–मानसिक धरातल से जुड़ी लड़कियों ने जब एक रास्ता अपनाया तो दिमाग में बस एक ही बात थी–समय की इस प्रगतिशील और तांडवी विध्वंषक धारा से संघर्ष करने की चुनौती। बेगुनाह को गुनाह से बचाने की बेचैनी। समीना अपने पति आसिफ से इस विश्वास के साथ कहती भी है "पुलिस के अंग्रेजी ढर्रे के खिलाफ आधुनिक पुलिस आएगी। ट्रेनिंग के कोर्स में बदलाव किया गया है।" पर पुलिस में पूरी तरह से मिलने के बाद उसे पता चलता है कि ऐसा कुछ भी नहीं है न ही यहाँ कुछ भी सरल है। वह समझ गई थी कि कागज पर बने कानून से आदमी कि प्रवृति नहीं बदलती। ऐसे में सिर्फ लड़की ही क्या वह पूरी जनता पुलिस के कोड़े खाने को विवश है जो सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से कमजोर है। एक बार इला समीना को क्षुब्ध होकर कहती भी है– "जनता पुलिस के कोड़े खाने को है। आम आदमी को तो मालिक लोग अपने पूर्वाग्रहों के कारण खोटा पाते ही हैं। लोकतन्त्र और पुलिस का भी छत्तीस का आंकड़ा है। जनता, दास और गुलामों का नाम है। यहां अंग्रेजी राज के खंडहरों के सिवाय कुछ नहीं है।"

मैत्रेयी ने अपने इन पात्रों के माध्यम से स्वतन्त्रता के इतने वर्षों बाद भी वर्तमान की कभी–कभी की न्यायिक व्यवस्था की जड़ता और उसकी अनुपयोगिता पर करारा

प्रहार किया है। लेखिका के ये दो मुख्य चरित्र, इला और समीना सिर्फ सामाजिक और न्यायिक रूप के विवर्ण होते चेहरे को ही नहीं दिखाते बल्कि इनसे जुड़कर कथानक में और भी ऐसे कई चरित्र प्रवेश पाते हैं जो पाठक को भीतर तक झंझोड़ते हैं। तार–तार करते हैं। प्रशासन के खोखलेपन को भी दिखाते हैं और उनके अधिकारियों के दोमुहे चरित्र को भी। रेशमी, शीतल, मनीषा, सीखणी जैसी कई ऐसी महिला पात्र हैं जो रूढ़िगत और दोषपूर्ण न्यायिक प्रक्रिया के कारण परिवार और जीवन से जूझती रहती हैं और बदले में पाती हैं शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना।

रश्मि, लेखिका के कथानक के बीच का ऐसा ही एक पात्र है जो माँ की अनुपस्थिति में अपने पिता द्वारा ही नष्ट की जाती है। माँ को जब पता चलता है तो वह तड़पती है, बिखरती है अपनी बेटी के दर्द से और अंततः समाज की सारी मान–मर्यादा का मुखौटा उतार पति को, भाई के साथ मिलकर जेल की सजा दिलवाती है। पर एक दिन समाज की मान–मर्यादा ही उसे पति को वापस लाने के लिए बाध्य कर देती है। उस दिन माँ से पत्नी का चरित्र जीत जाता है और माँ हार जाती है। रश्मि, जिसे माँ शब्द का भरोसा था, माँ के साथ का विश्वास था वह समाप्त हो जाता है। वह भाग निकलती है घर से बिना यह सोचे–विचारे कि वह जाएगी कहाँ ? रहेगी कैसे ? क्योंकि उसे अब पिता से ज्यादा माँ से डर लगने लगा है।

चकाचौंध, रफ्तार और अर्थ के असंतुलन से टूटते–बिगड़ते घर–समाज के साथ इसके पीछे के धुंधलके में बिखरते समाज के रूप को लेखिका ने कहीं–कहीं पात्रों द्वारा और कहीं पात्रों के अनुभव से बहुत गहरे रेखांकित किया है। यह तब और भी विद्रूप लगने लगता है जब वैश्यावृति करती पकड़ी गई रश्मि पुलिस की बर्बरता से थक कर इला को कहती है "आप ही देख लो नाइंसाफी कि मेरे बाप को तो पुलिस ने छोड़ दिया पर मुझे जब न तब गिरफ्तार करने को उतावले रहते हैं। उन्हें यह इल्म ही नहीं कि जुर्म किसने किया, मुजरिम कौन है ?" कथानक में पुलिस प्रशासन का गाली बकता, डंडे चलाता अक्खड़ अहंकारी और चापलूस चेहरा भी है तो ईमानदार और कर्मठ भी। घर–परिवार के बदलाव का स्वरूप है तो उसको तोड़ने और न तोड़ने के बीच उलझी एक हिचक भी। रूढ़िवादिता और अतिरूढ़िवादिता भी है तो समय के साथ चलने की चुनौती भी है और विश्वास भी। अपने लिए जगह बनाती आज की लड़कियां भी हैं जो घर से लेकर सामाजिक व्यवस्था से टकराती अपमानित होती, रास्ता बना रही हैं तो गाँव की वो बड़ी–बुढ़ियां भी हैं जो पीढ़ियों से नादिरशाही बंधनों से उलझी, ऊबी अब अपने गाँव–घर की बच्चियों के नग्न अपमान और पाशविक मृत्यु को देखकर गालियाँ भी बक रही हैं और शाप भी दे रही हैं। इतना ही नहीं लेखिका ने, इला के माध्यम से इस रूढ़िवादी समाज और भ्रष्ट कानूनी व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए लिखा है "जयंत लगता है तुम्हें न्योता दूँ कि चलो, लाशों की नुमाइश देखने, पश्चिम उत्तर प्रदेश से हरियाणा तक। हमारा इलाका हत्याओं और लाशों की नुमाइश का ग्राउंड बन गया है जहां जनता, पत्रकार और टीवी गाड़ियां उस वीराने में इकट्ठे होते हैं। नेता–अभिनेता सभी। जयंत, इतना बड़ा समायोजन देखने नहीं चलोगे? यूं तुम देखोगे, फसल चमक रही है, सूरज चमक रहा है। पेड़ों पर हरे–भरे पत्ते अपनी शाखाओं पर हिलडुल रहे हैं। मगर उन शाखों की कीमत बढ़ जाती है जिन पर लाशें झूलती हैं।"

मैत्रेयी पुष्पा के अन्य उपन्यासों से इस उपन्यास की पृष्टभूमि बहुत अलग सी है जो आज के आधुनिक समाज, संस्कृति और भटकाव के साथ ही समाज के मध्यम और निम्न वर्ग की सोच के परिवर्तन और उसकी शारीरिक–मानसिक यातनाओं का सच्चा और खुला पन्ना है। पर शब्दों का खुलापन जो उनके उपन्यासों की विशेषता है वह यहाँ पर भी है। फिर भी एक बात कहना चाहूंगी कि पाठक को या आलोचक को किसी भी लेखक या लेखिका को एक इमेज में बांधकर नहीं पढ़ना चाहिए। क्यूंकि कोई भी लेखक एक ही साँचे में ढाल कर अपनी रचनाओं को नहीं रच सकता।

राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित यह किताब
287 पृष्ठों की है, जिसका मूल्य है–350 रु.।

•

पता : एल–207, आशियाना–आँगन,
भिवाड़ी (अलवर), राजस्थान–301019
मो. : 9982448126

''पहली औरत'' ...यानि राना लियाकत बेगम

❑ सुरेन्द्र अग्निहोत्री

पहली औरत का अर्थ है पाकिस्तान की पहली महिला राजदूत, पहली महिला गवर्नर, कराची विश्वविद्यालय की पहली महिला कुलपति। साथ ही बेगम राना पाकिस्तान में वीमेन अचीवमेंट अवार्ड, जॉन एडम्स मेडल और संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार पुरस्कार को प्राप्त करने वाली इतिहास की पहली महिला थी।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से शिक्षित नवाबजादे लियाकत की एक ऐसी युवती से लखनऊ में हुई इस अनायास भेंट को प्रणय निवेदन में बदलते देर नहीं लगी, जिसकी जड़ें कुलीन कुमाऊँनी ब्राह्मण परिवार में थीं। विपरीत पृष्ठभूमि होने के बावजूद दोनों के बीच अच्छी निभी। लियाकत अली खान पाकिस्तान के प्रथम प्रधानमंत्री बने तो आइरीन पंत उनकी पत्नी बन 'गुल–ए–राना' या 'राना बेगम' कहलाई।

द्वितीय विश्व युद्ध ने जब आर्थिक–सैन्य, राजनीतिक और सामाजिक रूप से ब्रिटिश साम्राज्य को पृष्ठभूमि में लाकर उसकी कमर तोड़ दी। इसी कारण देश में इनके विरुद्ध चल रहा असंतोष भी इतनी चरम सीमा पर जा पहुंचा कि इन यूरोपियन आक्रांताओं ने देश छोड़ कर जाने में ही भलाई समझी। फिर भी जाते–जाते उन्होंने देश और लोगों को न केवल दो हिस्सों में बल्कि इस सीमा तक बाँट दिया कि आज भी भिन्न–भिन्न समुदायों और धर्मों के लोग एक दूसरे को संशय और दुर्भावना से देखते हैं।

ऐसे समाज और संदर्भित काल खंड में कुमाऊँ के अल्मोड़ा जनपद के एक उस ईसाई परिवार में जन्मी जो पूर्व में परम्परागत ब्राह्मण परिवार से सम्बद्ध था, आइरीन शीला पंत के पारिवारिक, शैक्षिक तथा सामाजिक–राजनैतिक

सफर के साथ ही उनके गैर–धर्म में हुए एक सफल वैवाहिक सम्बन्धों की एक रोमाँचक कथा है यह।

यह वही आइरीन थी जो कभी ऑक्सफोर्ड से शिक्षा प्राप्त कर लौटे करनाल के नवाबजादे और मुजफ्फरनगर के जागीरदार राजनीतिज्ञ लियाकत अली से लखनऊ के सत्ता के गलियारों में अनायास टकरा गई थी। यह छोटी–सी भेंट जल्दी ही प्रेम में परिवर्तित हो गई।

तमाम अनिश्चितताओं और आइरीन के परिवार की असहमति के बावजूद उनका विवाह हुआ। कैसे हुआ, यह विवरण तो नहीं पता, पर आइरीन विवाहोपरांत 'गुल–ए–राना' कहलाई। वह अपने पति की हमसफर होने के साथ ही उनकी निकटस्थ विश्वासपात्र सहयोगी बनी। उसने पति की राजनीति का उस मुकाम तक साथ दिया जहाँ वह एक नये राष्ट्र यानि पाकिस्तान के प्रथम प्रधानमंत्री के पद तक जा पहुंचे। इस रोमाँस और रिश्तों की रोमाँचक कामयाबी की कहानी है आइरीन से राना बेगम बनी इस कुमाऊँनी बाला की।

प्रधानमंत्री रहते हुए लियाकत की हत्या, तदुपरांत राना बेगम का पाकिस्तान में सामाजिक, राजनीतिक और कूटनीतिक जीवनचक्र का विवरण समेटे है यह पुस्तक। वहाँ की मुस्लिम महिलाओं के सशक्तिकरण में आजाद पाकिस्तान की पहली औरत या 'फर्स्ट लेडी ऑफ पाकिस्तान' के रूप में बेगम राना की भूमिका की कहानी भी है यह कृति।

सन 1951 में उसके पति लियाकत अली खान की पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री पद पर रहते ही हत्या हो गई थी। जो व्यक्ति अपनी बेशुमार दौलत और रुतबा भारत में ही छोड़ गया हो, उसके साथ ऐसा होना वाकई दुःखदायी था। यह और भी दुःखदायी था कि आज तक इस हत्या का अधिकृत उद्देश्य भी ज्ञात नहीं हो सका और न ही हत्यारे की पृष्ठभूमि और इस घटना को अंजाम देने के उनके निर्णय की पड़ताल हो सकी। इस दर्दनाक घटना से दहल कर राना बेगम ने टूट कर अवसाद में जाने के बजाय स्वयं को महिलाओं की सशक्तिकरण की योजनाओं में व्यस्त रखा। बाद में सरकार ने उन्हें नीदरलैंड और इटली का राजदूत नियुक्त किया। जुल्फिकार अली भुट्टो की सरकार के समय वह पाकिस्तान के आर्थिक मामलों की मंत्री भी रहीं। उस अवधि में उन्हें देश में तमाम आर्थिक सुधार लागू करने के लिए भी जाना गया।

ऐसी परिस्थितियों में मुस्लिम महिलाओं को संगठित करना, उनमें चेतना के भाव डालना, और उन्हें हर तरह से–सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाना एक दुरूह काम था। इसलिए भी, कि वह स्वयं मूल रूप से उनके समाज से इतर पृष्ठभूमि रखती थी। पर, राना बेगम ने जो बीड़ा उठाया, उसमें उन्हें रास्ते मिलते चले गये, और अंततः वह इस महिला सशक्तिकरण के आन्दोलन की प्रथम पंक्ति की नेता कहलाई।

पाकिस्तान के इतिहास में महिलाओं को कोई जगह, कोई मुकाम और आम अधिकारों की प्राप्ति आसानी से नहीं हुई। यह सब टुकड़ों–टुकड़ों में हुआ, धीमे–धीमे हुआ और बहुत सतर्क दृष्टि से हुआ। परन्तु राना बेगम ने इस प्रक्रिया को निश्चित रूप से अपेक्षित गति दी, ऐसा कहा जा सकता है। वह इसलिए भी संभव हो सका, क्योंकि बेगम की हैसियत ऐसी थी, आम स्त्री की नहीं थी। तब वह पाकिस्तान की पहली औरत का दर्ज़ा जो रखती थी।

एक परम्परागत और रूढ़िवादी सोच के मुस्लिम–प्रभुत्व वाले पुरुष–प्रभावी समाज में राना बेगम की राहें कितनी दुरूह रही होंगी, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। राना लियाकत अली ने आजाद पाकिस्तान में महिलाओं के अधिकारों और उनके सशक्तिकरण के लिए जो दो संस्थाएं खडी कीं, वह समाज की तत्कालीन समय की गहन पितृसत्तात्मक सत्ता और लिंग भेद की स्थिति को प्रतिबिम्बित करती हैं। पाकिस्तान वीमेंस नेशनल गार्ड और पाकिस्तान वीमेन नेशनल रिजर्व को एक लाभ यह भी था कि सरकारी मशीनरी उनके समर्थन में दृढ़ता से खड़ी थी।

पाकिस्तान के तानाशाह शासक राष्ट्रपति जनरल जिया–उल–हक के शासन काल में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो को एक आपराधिक मुकदमे में फांसी की सजा सुनाई गई थी, तो राना बेगम उस फैसले को राजनीति से प्रेरित बता कर खुल कर विरोध और जन आन्दोलन खड़ा करने वाली पहली महिला थीं।

सेतु प्रकाशन, नोयडा से हाल ही में प्रकाशित यह किताब 272 पृष्ठों की है। मूल्य रु 349 है।

•

पता : ए–305, ओ सी आर बिल्डिंग,
विधानसभा मार्ग, लखनऊ–226001
मो. : 9415508695

चिनहट 1857 : संघर्ष की विस्मृत हुई गौरव गाथा

❑ एस. अग्निहोत्री

30 जून 1857 को लखनऊ के चिनहट–इस्माइलगंज में ऐसा युद्ध हुआ था, जहाँ ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के सैन्य बलों और फिरंगी अभिमान के प्रतीकों को भारतीय जुनूनी लोगों ने नेस्तनाबूद कर दिया था। उस हार ने भारतीय विद्रोही पक्ष के जुनून को युद्ध के मैदान में बहुत अनुशासित तरीके से फिरंगियों के ऊपर हावी होते देखा था। इस युद्ध की एक विशेष बात यह भी थी कि आखिरी समय तक ब्रिटिश पक्ष के उच्चाधिकारी यह समझ ही नहीं पाए कि चिनहट का युद्ध उनके लिए विजय की नहीं, एक बड़ी पराजय की कहानी लिख देने का प्रारब्ध लिए हुए आया है।

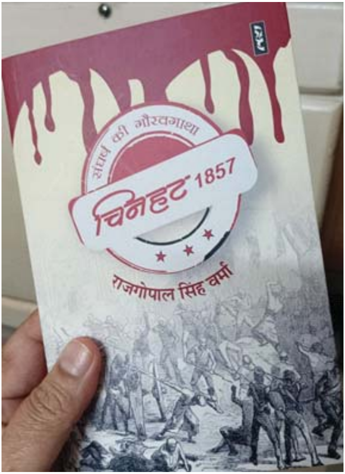

यह राजगोपाल सिंह वर्मा की लिखी किताब है, जिसके लिए उन्होंने इतिहास के प्रामाणिक स्रोतों का उपयोग किया है। इतिहास के विषयों पर उनकी कई किताबें पिछले वर्षों में हमारी नज़रों में आई हैं, और सबने कुछ न कुछ नयापन और नई दृष्टि से अवगत कराने में सफलता प्राप्त की है। "चिनहट 1857 : संघर्ष की गौरव गाथा" अभी तक विस्मृत रहे 1857 के एक घटनाक्रम की जरूरी पड़ताल है।

यह युद्ध इतनी अल्प अवधि का था (मात्र कुछ ही घंटों का), कि पूर्वाह्न नौ बजे से लेकर 11 बजे तक ईस्ट इंडिया कंपनी की तोपों, हाथियों, घोड़ों और हथियारों से सज्जित इस सेना के बचे हुए लोग बुरी तरह पराजित होकर रेजीडेंसी की ओर भागने और

स्वयं को सुरक्षित करने में लग गए थे। यह उनकी पूर्ण और निर्णायक पराजय थी, पर ईस्ट इंडिया कंपनी के जिम्मेदार लोगों ने इस तथ्य को कभी स्वीकार नहीं किया। दुःखद यह भी है कि भारत के इतिहासकारों और साहित्यकारों ने भी आजादी की इस पहली लड़ाई के घटनाक्रम पर कोई ध्यान ही नहीं दिया, इसलिए आमजन आज भी इस युद्ध से अपरिचित हैं।

चिनहट का युद्ध अचानक नहीं हो गया था। इसके लिए उसी तरह की परिस्थितियों का निर्माण हो रहा था, जैसे 10 मई को मेरठ के विद्रोह के पीछे विकसित हुई घटनाएं जिम्मेदार थीं। अगर सब कुछ ठीक से चलता रहता, तो न कोई क्रांति होती, और न ही लोगों को कोई शिकायत। फिरंगी शासन करते रहते और यहाँ के संसाधनों का दोहन कर हमें अंधेरे युग में धकेलते रहते, पर कहते हैं कि सत्ता भ्रष्ट करती है, और निरंकुश सत्ता पूरी तरह से भ्रष्ट करती है। यह कहावत इन फिरंगियों के ऊपर ठीक बैठती थी। ये हमारे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए आकंठ भ्रष्ट आचरण में डूबने, स्थानीय लोगों के लगातार उत्पीड़न के साथ–साथ यहाँ के निवासियों की भावनाओं के प्रति भी दुस्साहसिक रूप से असंवेदनशील हो चुके थे। ऐसे में चिनहट के रूप में इन्हें अवध के लोगों और उनकी अपनी सेनाओं के स्थानीय सैनिकों के आक्रोश का सामना तो करना ही था। ऐसे में चिनहट के इस युद्ध से पूर्व की परिस्थितियों और उसके बाद के घटनाक्रम को समझना भी जरूरी है। इसीलिए इस पुस्तक में वह विवरण भी दिया गया है जो एकबारगी इस घटनाक्रम से असंबद्ध लगता है, पर वह चिनहट के युद्ध का एक मजबूत कारक रहा है, जिसे समझे बिना इस युद्ध को समझना उचित न होगा।

इस युद्ध से एक बात और महत्त्वपूर्ण रूप से उभर कर आई थी। स्थानीय लोगों ने अपनी सांस्कृतिक विरासत और संस्कारों के अनुरूप सिद्ध कर दिखाया था कि वे किसी भी आक्रांता के विरुद्ध जी–जान से लड़ने को तैयार हैं, पर मानवीयता उनके मानस का अटूट हिस्सा है, उनके वजूद में आत्मसात है, वे उससे कभी पीछे नहीं हटने वाले। यही कारण था कि जब चिनहट के युद्ध में फिरंगियों ने हार के बाद हड़बड़ाहट में रेजीडेंसी की तरफ वापसी की तो लुटी–पिटी अवस्था में, जून की तपती गर्मी में उन भूखे–प्यासे अफसरों और सैनिकों को दूध–पानी पिलाने, उनकी सेवा–सुश्रूषा करने, खाद्य सामग्री उपलब्ध कराने में आम लोगों ने जो संवेदनशील भावनाएं दिखाईं, वे इन तथाकथित शिक्षित और आधुनिक, परंतु असंवेदनशील कहे जाने वाले फिरंगियों के लिए आँखें खोल देने वाली घटनाएं थीं।

फिरंगियों के खिलाफ धीरे–धीरे लखनऊ ही नहीं, पूरे अवध प्रांत का माहौल कुछ इस तरह से आक्रोशित हो चला था कि यहाँ का हर इन्सान जन भावनाओं के सम्मान में ईस्ट इंडिया कंपनी की सत्ता का विरोध करने को सक्रिय हो चला था। फिर बात राष्ट्रीय गौरव और अस्मिता की भी आ ठहरी थी। शहर और गाँवों के हर किसी वाशिंदे को इस सत्ता से शिकायत थी। मूल बात यह थी कि जन–मानस ने अच्छी तरह समझ लिया था कि ये लोग व्यापारियों के चोले में आये आक्रांता हैं और हम यहाँ के मूल निवासी, इस सांस्कृतिक और सामाजिक धरोहर के संरक्षक! हमारी ज़मीन और हमारे संसाधनों पर किसी विदेशी शक्ति का प्रभुत्व भला क्यों कायम रहे? चिनहट उसी असंतोष की एक आक्रामक अभिव्यक्ति थी।

लेखक राजगोपाल सिंह वर्मा को बहुत बधाई कि उन्होंने हमारे इतिहास को, हम लोगों के पाठकीय ज्ञान को समृद्ध किया है।

232 पृष्ठ की यह किताब सेतु प्रकाशन, नोयडा से प्रकाशित हुई है। मूल्य : 325 है।

पता : ए–305, ओ सी आर बिल्डिंग,
विधानसभा मार्ग, लखनऊ–226001
मो. : 9415508695

ई–पेमेण्ट हेतु प्रपत्र

DDO Code

4731

Name (Account holder)

Account Number

Bank Name

ACCOUNT TYPE

☐ SBI Account

☐ Other Then SBI Account

(Tick Type of account "SBI Account" or "Other then SBI Account")

Branch Code / IFSC Code

(Branch Code if account type is SBI Account else IFSC Code)

Address 1	
Address 2	
Address 3	
Mob. No.	
Email ID	

उत्तर प्रदेश

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0, लखनऊ

ग्राहक/सदस्यता संबंधी प्रारूप

मैं 'उत्तर प्रदेश' (मासिक) पत्रिका की सदस्यता प्राप्त करना चाहता हूँ

वार्षिक	रु. 180/-	☐
द्विवार्षिक	रु. 360/-	☐
त्रैवार्षिक	रु. 540/-	☐

(कृपया सदस्यता अवधि चिन्हित करें)

डी.डी/म.आ.नं. : ____________ तिथि ________

उत्तर प्रदेश : अक्टूबर–दिसम्बर, 2022

नाम : ____________

ग्राहक का विवरण : छात्र ☐ विद्वत्जन ☐

संस्था ☐ अन्य ☐

पत्र व्यवहार का पता : ____________

पिन कोड नं0: ☐☐☐☐☐☐

यदि आप पता बदलना चाहते हैं अथवा ग्राहक नवीनीकरण करना चाहते हैं तो कृपया अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख करें ☐

नोट : कृपया डी.डी./एम.ओ. (धनादेश) निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग (प्रकाशन प्रभाग), दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ–226 001 के नाम ही भेजने का कष्ट करें।

डॉ. ओम निश्चल के दो गीत

यह धान का मौसम है

बादल से कहो बरसें पांवों से कहो थिरकें
हैं कह रही फिज़ाएँ अरघान का मौसम है
यह धान का मौसम है।

ये कलियों के दिन हैं ये बदलियों के दिन हैं
ये कोयलों के दिन हैं ये बिजलियों के दिन हैं
घर–घर है पक रहा कुछ पकवान का मौसम है।

सावन अभी गया है भादों का मन नया है
पत्तों में ताजगी है तन मन भिगो गया है
आने लगे हैं पाहुन मेहमान का मौसम है।

है क्वार में दशहरा कार्तिक में है दीवाली
कुदरत ने सजाई है ज्यों अल्पना की थाली
कांधे–धरे अँगौछा खलिहान का मौसम है।

पुरवा जो बह रही है कुछ भेद कह रही है
चौपाल पर डटे सब क्या खूब बतकही है
सिरहाने सरौता है यह पान का मौसम है।

डूबे न कहीं दुनिया सूखें न कहीं फसलें
जलदेवता से कह दो वे न्याय से न बिचलें
कर्मण्य किसानों के सम्मान का मौसम है।
यह धान का मौसम है।

तीर्थ कोई पा लिया हमने

तीर्थ कोई पा लिया हमने
जब लिया अँकवार में तुमने।
तुम मिले तो याद घिर आई
एक स्मिति चित्त में छाई
फिर उमड़ आए दृगों में जल
वेदना की साँझ गहराई
झिलमिलाए फिर पुराने दिन
आँख में सपना लगा तिरने।
तुम न थे तो जिंदगी कम थी
रोशनी में रोशनी कम थी
हास से उल्लास ओझल था
आँसुओं में भी नमी कम थी
उँगलियों में भर गया कंपन
कनखियों से जो छुआ तुमने।
बो गया अहसास कोई फिर
छंद–सा नवगीत की धुन में
भर गया चुपचाप ज्यों कोई
फिर अपरमित रंग सावन में
खुल गई मन में लगी साँकल
साँस में पुरवा लगी बहने।

◆

पता : जी 1/506 ए, दाल मिल रोड,
उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059
मो. : 9810042770

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक	:	समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
नया दौर (उर्दू)	:	सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी)	:	उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए शिशिर, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित, सम्पादक– **कुमकुम शर्मा**